बोध कथाएं

सन्तराम वत्स्य

साधना निजी पुस्तकालय
संख्या.....दिनांक.....

दो शब्द

ये छोटी-छोटी बोध-कथाएं कथा-साहित्य में उसी स्थान की अधिकारिणी हैं, जो स्थान भाषा में लोकोक्तियों, मुहावरों या सूक्तियों को प्राप्त है।

तत्त्व-ज्ञान की गहरी से गहरी बातें तीर्थभूत महात्माओं के स्वात्मानुभव से भाषित होकर जन साधारण के लिए सुलभ हो जाती हैं। शुभ्रज्योति के स्फुलिंगों की भांति ये कथाएं अन्तस् के अंधेरे कोनों को भी प्रकाशित कर देती हैं।

मैं जो कुछ पढ़ता रहता हूं, उसमें से जो अपनी छाप छोड़ जाता है, उसी का संकलन यह पुस्तक है। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं से, पुस्तकों से मैंने यह संचय किया है।

मैं आश्वस्त हूं कि मेरा यह श्रम व्यर्थ नहीं जाएगा और जो भी इसे पढ़ेगा, बार-बार पढ़ना चाहेगा, उदासी और उद्विग्नता के क्षणों में उसे एक आश्वासन मिलेगा।

—सन्तराम बत्स्य

बोध-कथाएं

:

सन्तराम वत्स्य

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे
प्रथम संस्करण : १९७१
आवरण : नीला चटर्जी
प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, दिल्ली-६
मुद्रक : राज कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-३२

BODH-KATHAYEN (Inspiring Short-Stories)
by Sant Ram Vatsaya 2.50

कथा-क्रम

प्रभु का द्वार	१	हृदयों पर अधिकार	२५
खोज जारी रहे	१	पुरुषार्थ	२५
हानिकारक शिक्षा	२	खाली हाथ कैसे लौटा दें ?	२६
अखंड : पूर्ण	२	अन्न की महिमा	२७
ज्ञानोपदेश का मर्म	३	मान-मर्यादा	२८
उपदेश	५	धन के दास मत बनिये	२९
ज्योति भीतर है	६	अहंकार	३०
अमानत	६	सत्य और असत्य	३२
पर-उपदेश कुशल	८	सहनशीलता	३३
समस्या	९	मीठा गप्प : कड़वा थू	३३
यह भी तो दान है	१०	परमात्मा का धन्यवाद	३४
पहले समस्या को समझो	११	उचित शैली	३५
दीक्षा	१२	फलोचित साधना	३६
भागो मत	१५	अन्तर का नारायण	३६
अनंत क्षमा	१६	जंगम तीर्थ	३७
प्रार्थना	१७	त्याग	३७
जन-सेवा	१७	ज्ञानार्जन	३८
बासी भोजन	१८	न्याय	३९
प्रभु-प्रेम	२०	दुर्लभ शरीर	३९
कर्मार्चन	२०	महान् आत्मा	४१
देहाभिमान	२२	आत्म-निरीक्षण	४१
आत्म-वंचना	२२	आखिरी ठेला	४२
विषपान	२३	बन्धन	४३

संकीर्ण दृष्टि ४४
जीवन ४४
स्थित-प्रज्ञ ४५
अपराध और दण्ड ४६
सरल साधना ४७
महान् बनने के लिए ४८
माया का मोह ४९
स्नेहिल स्पर्श ५०
संग्रह-त्याग ५१
प्रेम की शक्ति ५२
'स्व'-रूप ज्ञान ५३
अपवित्रों में अपवित्र ५३
संकल्प-शक्ति ५४
साथ ले जाऊंगा ५५
पहले रस्सी तो खोलो ५५
शक्ति नहीं, विरक्ति ५६
सिद्धियाँ ५७
सुखदा मणि ५७
सज्जन ५९
दुःख से सुख ५९
समर्पित जीवन ६०
विचार की शक्ति ६१
अहं ब्रह्मास्मि ६२
देह-मणि ६२
वृत्तियों का प्रभाव ६३
एकनिष्ठ श्रद्धा ६४
धर्म का सार ६४
प्रेम ६५
दान ६६
जीवन ६६
प्रायश्चित ६७
पूर्णता ६८
संत-महिमा ६९
स्वाद और भय ६९
घट में परमेश्वर ७०
पुरुषार्थ-महिमा ७१
शील-सम्पत्ति ७२
भाव-भूमि ७३
मोह-पाश ७४
वाक्-संयम ७५
सन्देह ७६
सच्ची दया ७७
भले काम में देर क्यों ? ७७
गलत दिशा ७८
सुभाव : सहायता ७९
स्थान नहीं, स्वभाव बदलो ८०
अनेक रास्ते ८०
श्रद्धा और अंहकार ८१
भीतर का मैल ८२
सूत्र और भाष्य ८२
ये तेरे ही रूप ८४
मन के जीते जीत ८४
हिम्मत न हारिये ८६
रोगी और वैद्य ८७

बोध-कथाएं

प्रभु का द्वार

एक फकीर बड़ी बेकली से प्रार्थना कर रहा था–"हे प्रभु ! अपना द्वार खोलो, जिससे मैं तुम्हारे पास आ सकूं ।" सन्त राबिया बसरी जो उधर से जा रही थी, यह सुनकर बोलीं—"भाई मेरे, क्या सचमुच प्रभु का द्वार बन्द है, देखो तो !"

खोज जारी रहे

एक रात सुलतान महमूद घोड़े पर बैठकर अकेला सैर करने निकला। राह में उसने देखा कि एक आदमी सिर झुकाए सोने के कणों के लिए मिट्टी छान रहा है और छान-छानकर मिट्टी का खासा ऊंचा ढेर उसने लगा दिया है। सुलतान उसे क्षणभर देखता रहा और फिर अपना भुजबन्द मिट्टी के ढेर पर फेंककर तेजी से आगे बढ़ गया।

अगली रात सुलतान फिर वैसे ही उस मार्ग से निकला और उसने देखा कि वह आदमी अब भी उसी प्रकार मिट्टी छानने में व्यस्त है। वह बोला—"भले आदमी, कल तुम्हें जो भुजबन्द मिला, वह तुम्हारी सारी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए

पर्याप्त है, फिर भी तुम मिट्टी छानना बन्द नहीं करते !"

उस आदमी ने उत्तर दिया—"कल ऐसी बढ़िया चीज मिली, इसीलिए तो मुझे जीवन भर खोज जारी रखनी पड़ेगी।"

हानिकारक शिक्षा

एक यूनानी अपने देश में बंसी बजाने का शिक्षण देता था। उसके पास दो विद्यार्थी सीखने के लिए आए। एक बिलकुल नया था और दूसरा कुछ सीखा-पढ़ा। शिक्षक ने नए से आधा शुल्क लिया और सीखे हुए से दुगुना।

इससे दोनों विद्यार्थी आश्चर्य में पड़ गए। शिक्षक ने कहा—"देखो, नए व्यक्ति को अभ्यास कराना सरल है; किन्तु जिसकी आदत बिगड़ गई है या जिसने गलत-सलत सीखा, उसे समझाना कठिन होता है।"

(मुनि राकेशकुमार)

अखंड : पूर्ण

एक बार एक पिता और पुत्र खाना खाने बैठे। पिता की थाली में माँ ने एक पूरा लड्डू रखा और पुत्र की थाली में आधा। बच्चा रोने लगा। हठ करने लगा कि उसे पूरा ही लड्डू चाहिए।

माँ चतुर थी। उसने एक छोटा-सा गोल लड्डू बनाया और बच्चे को परोस दिया। लड़का खुश हो गया। पिता को बड़ा लड्डू मिला और बच्चे को छोटा तो भी वह खुश हुआ, क्योंकि उसे पूरा लड्डू मिल गया था।

इसका अर्थ यह हुआ कि बच्चा कहता है—"मेरा पिता जितना पूर्ण आत्मा है, उतना ही पूर्ण आत्मा मैं भी हूं। मैं छोटा हूं पर टुकड़ा नहीं हूं।" (विनोबा)

ज्ञानोपदेश का मर्म

एक बार एक शिष्य ने गुरु के पास जाकर निवेदन किया, "गुरुदेव, मुझे धर्म-ज्ञान का उपदेश दीजिये। मैं ज्ञान प्राप्त करके अपने जीवन को सार्थक करना चाहता हूँ।"

गुरु ने उसे एक नजर देखा और बोले कुछ नहीं। केवल हँस भर दिये। शिष्य गुरुदेव की इस मौन मुसकान का किंचित् भी अर्थ ग्रहण न कर सका। वह भी अवाक् हो गुरु के मुख को निहारता रह गया, विमूढ़-सा।

यही क्रम कई दिनों तक चलता रहा। शिष्य रोज नियमबद्ध उनके पास जाता और विनीत स्वर में धर्म-ज्ञान देने की प्रार्थना करता। गुरु मुसकरा भर देते, बोलते कुछ नहीं। इस हमेशा की मुसकराहट को देखते-देखते शिष्य की उद्विग्नता बढ़ने लगी।

इसी तरह कुछ दिन और बीत गये। लेकिन शिष्य हताश नहीं हुआ।

एक दिन जब शिष्य ने अपना यही प्रश्न गुरु के सम्मुख पुनः दुहराया, तो गुरु उसे नदी पर ले गये और उससे पानी में डुबकी लगाने के लिए कहा। आज्ञानुसार शिष्य तुरन्त पानी में उतर गया और डुबकी लगाई। वह अभी पानी के अन्दर पैठा ही था कि झपटकर गुरु ने ऊपर से उसकी गर्दन दबा दी और उसे ऊपर न निकलने दिया। पानी में हवा न मिलने के कारण शिष्य का अन्दर-ही-अन्दर दम घुटने लगा। वह ऊपर आने के लिए छटपटाने लगा, हाथ-पैर मारने लगा।

अन्त में गुरु ने हाथ कुछ ढीला किया और जब शिष्य पानी के ऊपर आकर दम लेने लगा, तब बड़े गम्भीर स्वर से गुरु ने उससे पूछा, "जब तुम पानी के भीतर थे, तब तुम्हारी सबसे तीव्र इच्छा क्या थी ?"

सकपका गया शिष्य प्रश्न सुनकर। उसने कुछ सहमते हुए कहा, "गुरुदेव ! तब मुझे केवल हवा की ही कामना थी। मैं सोच रहा था, एक सांस लेने लायक हवा के लिए मैं सर्वस्व देने को तैयार हूँ।" फिर शिष्य ने कुछ स्तम्भित-से स्वर में कहा, "लेकिन गुरुदेव ! यह सब कुछ आप किस-लिए पूछ रहे हैं ? मेरे प्रश्न से इसका क्या सम्बन्ध ?"

गुरु ने शिष्य के प्रश्न का उत्तर प्रश्न के ही शब्दों में लपेटकर दिया, "क्या ईश्वर-प्राप्ति की ऐसी ही उतावली तुम्हारे अन्तर्हृदय को है ? अगर नहीं, तो धर्म के हाट में तुम्हारी और किसी नास्तिक की कीमत एक ही है। तुम दोनों में इतना ही अन्तर रह जाता है कि शुद्ध नास्तिक तुमसे कहीं

अधिक सच्चा और अपनी मान्यता के प्रति ईमानदार होता है। जब तक तुम्हारे अन्दर ईश्वर-प्राप्ति की उत्कट भावना दृढ़ नहीं होती, तब तक ज्ञान-लाभ का कोई क्रियात्मक प्रतिफल नहीं निकल सकता।"

उपदेश

देव, मनुष्य और दानव—तीनों ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से प्रजापति के पास गए। प्रजापति ने तीनों को एक ही अक्षर 'द' का उपदेश दिया। तीनों की जिज्ञासा बहुत उत्कट थी। आत्म-निरीक्षण की तीनों को गहरी इच्छा थी। इसलिए 'द' अक्षर सुनते ही देवता समझ गए कि हम लोग बड़े विलासी हैं, इसी से प्रजापति ने हमें दम अर्थात् इन्द्रियों का दमन करने का उपदेश दिया है। मनुष्यों ने सोचा कि हम लोभी हैं, इसलिए प्रजापति ने हमें दान करने का उपदेश दिया है। और दानवों को लगा कि हम बहुत क्रूर और निर्दय बन गए हैं, इसी से प्रजापति ने हमें दया करने का उपदेश दिया है।

सच तो यह है कि प्रत्येक को अपनी-अपनी कमी का अनुभव हुआ और उपाय सूझा अपनी अन्तर्मुखता के प्रताप से। प्रजापति ने तो उन्हें संकेत मात्र किया था।

(बृहदारण्यकोपनिषद्)

ज्योति भीतर है

बहुत साल पहले एक दिन मैंने पूज्य दादा (साधु वासवानी) से कहा—"आपने मुझे धर्मग्रन्थों और सन्तों के जीवन-चरित्र का स्वाध्याय करने को कहा था। जब तक मैं इनके अध्ययन में डूबा रहता हूं, अपने को तरल और प्रकाशमय, आनन्द और शान्ति से भरा-भरा अनुभव करता हूं। किन्तु स्वाध्याय बन्द करते ही प्रकाश ओझल हो जाता है और मैं अन्धकार से घिर जाता हूं।"

दादा जी का उत्तर एक रूपक-कथा के रूप में था। बोले—"दो आदमी अंधेरी रात में जंगल में यात्रा कर रहे थे। इनमें से एक के पास लालटेन थी, जिसकी रोशनी में वे आगे बढ़ रहे थे। आधी रात में वे ऐसी जगह पहुंचे, जहां से दोनों की राहें अलग-अलग हो जाती थीं और दोनों को अकेले-अकेले आगे जाना था। जिसके पास लालटेन थी, वह निर्भय होकर आगे बढ़ गया। दूसरा आदमी भय से थर्रा उठा।" फिर क्षणभर रुककर वे बोले, "ज्योति जला लो, ज्योति भीतर है।"

(जे० पी० वासवानी)

अमानत

सबाथ का दिन था और रबी मेइर पाठशाला में बैठकर जनता को धर्म-शिक्षा दे रहे थे। और जब वे पाठशाला में

ही थे, तभी घर पर उनके दो बेटों की मृत्यु हो गई। दोनों बेटे बड़े रूपवान्-गुणवान्, धर्मशास्त्रों के पंडित थे। रबी की पत्नी ने दोनों मृत पुत्रों को शयनागार में लिटाकर उन पर श्वेत चादर ओढ़ा दी।

शाम को रबी मेहर घर लौटे। "बेटे कहाँ हैं ?" आते ही उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा—"पाठशाला में मैंने कई बार उन्हें खोजा, पर वे दिखाई नहीं पड़े।" पत्नी प्याले में पेय भर लायी। रबी ने प्रभु का नाम लेते हुए उसका पान किया और भगवान को धन्यवाद दिया कि सबाथ निर्विघ्न व्यतीत हो गया। फिर प्रश्न किया—"मेरे बेटे कहाँ हैं ?"

"यहीं पास ही कहीं होंगे।" कहते हुए पत्नी भोजन का थाल ले आयी, ताकि वे भोजन कर लें।

जब भोजन समाप्त कर रबी प्रभु को धन्यवाद दे चुके तो पत्नी बोली, "अगर आज्ञा हो तो एक प्रश्न आप से पूछूं ?" बोले, "पूछो।" पत्नी कहने लगी, "कुछ समय पूर्व एक व्यक्ति ने मेरे पास गहने रखवाए थे। अब वह उन्हें वापस मांगता है। क्या मैं गहने उसे लौटा दूं ?" सुनकर रबी बोल उठे, "मैं समझता हूं मेरी पत्नी को तो ऐसा प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।"

पत्नी ने उत्तर दिया, "हाँ, होनी तो नहीं चाहिए। फिर भी सोचा, आपको बताए बिना गहने लौटाना संभवतः ठीक नहीं होगा।" और इसके बाद वह पति को शयनागार में ले गई और शवों पर से चादर हटा दी।

'हाय, मेरे बेटो !···मेरी आँखों के तारो !··· "

रबी मेइर फूट-फूटकर रोने लगे। उनकी पत्नी भी दूसरी ओर मुँह करके सिसकियाँ भरती रही। फिर अन्त में पति का हाथ पकड़कर बोली, "आप ही कह रहे थे, दूसरे की अमानत लौटाने में हमें अनिच्छुक नहीं होना चाहिए। ये हीरे भगवान् ने दिये थे, उन्होंने ही वापस ले लिए। धन्य है प्रभु!"

पर-उपदेश कुशल

पूर्वी बंगाल के कुछ जिलों में दुर्भिक्ष पड़ा था। स्वामी विवेकानन्द पीड़ितों के लिए अन्न-धन एकत्र कर रहे थे। जब वे ढाका में थे, तब उनसे कुछ वेदान्ती पंडित शास्त्रार्थ करने आए। स्वामी जी ने उन्हें बड़े आदर से बिठाया और अकाल की चर्चा करते हुए कहा, "जब मैं अकाल से लोगों को मरते हुए सुनता हूं तो मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। क्या इच्छा है प्रभु की!"

यह सुन सभी पंडित मौन रहे और एक-दूसरे से नजर मिलाकर मुसकराने लगे। उनकी इस विचित्र प्रतिक्रिया को देखकर स्वामी जी स्तब्ध रह गए। कुछ देर मौन रहने के पश्चात् वे पूछ बैठे, "आप लोग मुझ पर हँस क्यों रहे हैं?" एक पंडित ने और अधिक मुसकराते हुए कहा, "स्वामी जी, हम तो समझते थे कि आप वीतराग संन्यासी हैं। सांसारिक सुख-दुख से ऊपर हैं। लेकिन आप तो इस नाशवान् शरीर

के लिए आँसू बहाते हैं, जो आत्मा के निकल जाने पर मिट्टी से भी गया-बीता है।"

स्वामी जी उनके तर्क को सुनकर अवाक् रह गए। आवेश में आकर डंडा उठाकर पंडित जी की ओर बढ़े और बोले, "लो, आज तुम्हारी परीक्षा है। यह डंडा तुम्हारी आत्मा को नहीं मारेगा, केवल नश्वर देह को ही मारेगा। अगर यथार्थ में पंडित हो, तो अपनी जगह से मत हिलना।"

फिर क्या था, पंडित जी वहाँ से ऐसे भागे कि घर पहुंचकर ही सांस ली और डंडे के भय से अपना सारा शास्त्र-ज्ञान भूल गए।

समस्या

एक आदमी को अपनी परछाईं से डर लगता था और उसे अपने पदचिह्नों से चिढ़ थी। उसने दोनों से छुटकारा पाने के लिए एक दिन भाग निकलने की ठानी; और वह दौड़ पड़ा। मगर जितनी बार उसके पग उठते, उतनी ही बार एक नया पदचिह्न बन जाता और परछाईं भी उसके कदमों से चिपकी हुई-सी उसके साथ-साथ दौड़ती थी। उसने सोचा—मेरी चाल धीमी है, इसलिए ऐसा हो रहा है। सो उसने चाल दुगुनी कर दी। वह दौड़ता ही रहा, चाल बढ़ाता ही रहा। अन्त में बेदम होकर गिर पड़ा और दम तोड़ दिया।

भले आदमी को इतनी-सी बात नहीं मालूम थी कि छाँव

में जाकर बैठ जाता, तो परछाईं स्वयं पीछा छोड़ देती; और चलना बन्द कर देता तो नए पदचिह्न बनने बन्द हो जाते। कैसा मूर्ख आदमी था !

हम सभी उस मूर्ख आदमी के भाई-बन्द हैं; अपनी समस्याओं से संत्रस्त होकर, उनसे छुटकारा पाने के लिए अंधाधुन्ध भागने लगते हैं। ठीक है, सारी लोकयात्रा छाँव में निश्चल बैठकर नहीं की जा सकती। दुनिया को धूप में निकलना ही पड़ता है। पर प्रयत्नपूर्वक, प्रार्थनापूर्वक इतना प्रकाश हम अपने भीतर क्यों न भर लें कि किसी पर हमारी काली परछाईं न पड़े; और क्यों न हम सोच-समझकर सही राह पर चलें कि हमें अपने पदचिह्नों से चिढ़ने की आवश्यकता ही न रह जाए।

(दत्तोपन्त)

यह भी तो दान है

मैं सड़क पर चला जा रहा था। एक जरा-जीर्ण भिखारी ने मुझे रोका। लाल आँसू भरी आंखें, नीले होंठ, धूलि-धूसरित चिथड़े, रिसते घाव···ओह, गरीबी ने कितना बीभत्स बना डाला था उस अभागे जीव को ! उसने अपना लाल, सूजा हुआ मैला हाथ मेरे सामने फैला दिया। उसने कराहट के साथ स्पष्ट शब्दों में सहायता की याचना की।

मैं एक-एक करके अपनी सब जेबें टटोल गया। न बटुआ, न घड़ी; और तो और रूमाल भी नहीं। कुछ भी तो

न था मेरे पास। और भिखारी अभी भी प्रतीक्षा कर रहा था···और उसका फैला हुआ कमजोर हाथ काँप रहा था।

परेशान और लज्जित होकर मैंने उसका मैला कांपता हुआ हाथ थाम लिया···"भैया, नाराज मत होना, मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

भिखारी ने अपनी लाल-लाल आँखों से मुझे निहारा, उसके नीले होंठ मुसकरा उठे और उसने भी मेरी ठंडी उंगलियाँ पकड़ लीं। "तो क्या हुआ भाई, इसके लिए भी धन्यवाद! यह भी तो दान है।"

मैं जानता था, मैंने भी उस भाई से दान पाया है।

(तुर्गनेव)

पहले समस्या को समझो

एक विश्वविद्यालय के एक अध्यापक सत्रारंभ श्यामपट्ट पर '४' और '२' के अंक लिखकर करते थे। वे दोनों अंकों को लिखकर छात्रों से पूछते—"क्या हल है?"

कोई छात्र शीघ्रता से उत्तर देता—"छः।"

और फिर कोई दूसरा कहता—"दो।"

किन्तु अध्यापक को सिर हिलाते देखकर अंततः अंतिम सम्भावना को सोचकर शेष छात्र चिल्लाते—"आठ।" किन्तु अध्यापक तब भी अस्वीकृतिसूचक सिर हिला देते।

और तब कक्षा में सन्नाटा छा जाता था, क्योंकि और कोई उत्तर हो ही नहीं सकता था।

फिर वे अध्यापक हँसते हुए कहते थे—"आप सभी ने अत्यन्त आधारभूत प्रश्न ही नहीं पूछा। आपने यही नहीं जानना चाहा कि वस्तुतः समस्या क्या है। और जो समस्या को भली प्रकार जाने बिना ही समाधान खोजने में लग जाता है, निश्चय ही वह समाधान तो पाता ही नहीं है, उल्टे समस्या को और उलझा देता है।"

क्या यह सत्य नहीं है कि समस्या को जाने बिना ही समाधान खोज और पकड़ लिए जाते हैं, जबकि समाधान नहीं, अपितु महत्त्वपूर्ण तो सदा समस्या ही है; क्योंकि अन्ततः समस्या को उसकी समग्रता में जान लेना ही समाधान बनता है।

और गणित में ऐसी भूल हो तो हो; क्या जीवन में भी ऐसा ही नहीं होता है?

(आचार्य रजनीश)

दीक्षा

सन्त आगस्टिनस एक सुबह सागर-तट पर था। सूर्य निकल रहा था और वह अकेला ही घूमने निकल पड़ा था। अनेक रात्रियों के जागरण से उसकी आंखें भारी थीं। सत्य की खोज में वह लगभग सारी शान्ति खो चुका था। परमात्मा

को पाने के विचार में उसे पता ही नहीं पड़ता था कि दिवस और रात्रि कब बीत जाते थे। शास्त्र और शास्त्र, शब्द और शब्द, विचार और विचार···वह इनके ही बोझ के नीचे पूरी तरह दब गया था।

लेकिन उस दिन सुबह सब कुछ बदल गया। उसका उस दिन प्रातः सागर-तट पर घूमने आ जाना बड़ा सौभाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ। वह गया था तो विचारों के बोझ से दबा था, और लौटा तो एकदम निर्भार था। उसने सागर के किनारे एक छोटे-से बालक को खड़े देखा जो कि अपने हाथ में एक छोटी-सी प्याली लिये हुए था और अत्यन्त चिन्ता और विचार में डूबा हुआ था। स्वभावतः उसने उस बच्चे से पूछा, "मेरे बेटे! तुम यहां क्या कर रहे हो और किस चिन्ता में डूबे हो?"

उस बच्चे ने आगस्टिनस की ओर देखा और कहा, "चिन्तित तो आप भी हैं। कृपा करें और पहले आप ही अपनी चिन्ता का कारण बताएं। हो सकता है, कि जो मेरी चिन्ता है, वही आप की भी हो। लेकिन आपकी प्याली कहां है?"

आगस्टिनस तो कुछ समझा नहीं और प्याली की बात पर उसे हँसी भी आ गई थी। प्रकटतः उसने कहा, "मैं सत्य की खोज में हूं, और उसी के कारण चिंतित हूं।"

वह बच्चा बोला, "मैं तो इस प्याली में सागर को भर-कर घर ले जाना चाहता हूं, लेकिन सागर प्याली में आता ही नहीं है।"

आगस्टिनस ने यह सुना तो उसे अपनी बुद्धि की प्याली भी दिखाई पड़ गई और उसे सत्य का सागर भी दिखाई पड़ गया। वह हँसने लगा और उस बच्चे से बोला, "हम दोनों ही बच्चे हैं, क्योंकि केवल बच्चे ही सागर को प्याली में भरना चाहते हैं।" आगस्टिनस तो लौट गया और भूल गया प्याली को और पा गया सागर को। लेकिन वह बच्चा अभी भी सागर तट पर अपनी प्याली लिए चिंतित खड़ा हुआ है। उसे पता ही नहीं है कि हाथ की प्याली ही तो सागर से दूर है। और एक ही बच्चा वहां खड़ा हो तो कोई समझाए भी! पूरा सागर-तट ही तो बच्चों से भरा है और वे अपनी-अपनी प्यालियां लिए हुए खड़े हैं और रो रहे हैं कि सागर उनकी प्यालियों में नहीं समाता है।

और कभी-कभी उस सागर-तट पर इस बात पर भी संघर्ष हो जाता है कि किसकी प्याली बड़ी है, और किसकी प्याली में सागर के समा जाने की सर्वाधिक संभावना है। अब कौन उन्हें समझाए कि प्याली जितनी बड़ी हो, सागर के उसमें समाने की संभावना उतनी ही कम हो जाती है, क्योंकि बड़ी प्याली का अहंकार उसे छोड़ने ही नहीं देता है और सागर तो उन्हें मिलता है जो प्याली छोड़ने का साहस दिखा पाते हैं।

(आचार्य रजनीश)

१५

भागो मत

एक बार मैं काशी में किसी जगह जा रहा था। उस जगह एक तरफ भारी जलाशय और दूसरी तरफ ऊंची दीवार थी। उस स्थान पर बहुत से बन्दर रहते थे। काशी के बन्दर बड़े दुष्ट होते हैं। अब उनके मन में यह विकार पैदा हुआ कि मुझे उस रास्ते पर से न जाने दें। वे विकट चीत्कार करने लगे और झट आकर मेरे पैरों से चिपटने लगे। उन्हें निकट देखकर मैं भागने लगा। किन्तु मैं जितना ज्यादा जोर से दौड़ने लगा, वे उतने ही अधिक तेजी से आकर मुझे काटने लगे। उनके हाथ से छुटकारा पाना असंभव प्रतीत होने लगा। ऐसे ही समय एक अपरिचित ने आकर मुझे आवाज दी, "बन्दरों का सामना करो।" मैं भी जैसे ही उलटकर उनके सामने खड़ा हुआ, वैसे ही वे पीछे हटकर भाग गए।

समस्त जीवन में जो कुछ भी भयानक है, उसका हमें सामना करना पड़ेगा, साहसपूर्वक उसके सामने खड़ा होना पड़ेगा। यदि हमें मुक्ति या स्वाधीनता का अर्जन करना हो तो प्रकृति को जीतने पर ही हम उसे पाएंगे, प्रकृति से भागकर नहीं। कापुरुष कभी विजय नहीं पा सकता। हमें भय, कष्ट और अज्ञान के साथ संग्राम करना होगा, तभी वे हमारे सामने से भागेंगे।

(स्वामी विवेकानन्द)

अनंत क्षमा

गुरु थे महाज्ञानी। खेल-खेल में सीख देने में वे सिद्धहस्त थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्य को शतरंज खेलने के लिए बुलाया। गुरु-शिष्य दोनों शतरंज खेलने बैठे। खेल जब जमा तो गुरु ने जान-बूझकर गलत चाल चली। शिष्य मन ही मन खुश हो रहा था कि अपनी जीत है। झट गुरु ने अपनी भूल समझने का बहाना करते हुए कहा, "अरे भाई, इस बार माफ करो। मैंने गलत चाल चल दी। मुझे दोबारा चाल चलने दो।"

शिष्य बेचारा क्या करता! गुस्सा पीकर रह गया। गुरु ने कुछ देर बाद वह गलती फिर दोहराई और माफ़ी मांगने का नाटक रचा, तो शिष्य से नहीं रहा गया। वह गुस्से में कहने लगा, "यह कैसा अंधेर है! आप बार-बार भूल करें और मैं क्षमा करता रहूं। यह नहीं हो सकता। गुरु होंगे आप अपने घर में। पर मैं क्षमा नहीं कर सकता।"

गुरु होंठों में मुसकान भरकर शांत स्वर में बोले, 'बेटा, मैं मानता हूं कि मैंने दो बार भूल की। तुम में इतनी सहनशीलता नहीं कि मेरी भूल को क्षमा कर दो। पर उस भगवान् को देखो, जिसने तुम्हारी, मेरी और समस्त जीव राशि की सृष्टि की है। हम अपने नित्य के जीवन में कितनी भूलें करते हैं! वे भगवान् कहीं हम पर क्रोध करते हैं? सोचो, वे कितने क्षमाशील हैं। क्या हमें उनसे यह शिक्षा नहीं लेनी चाहिए?"

(रा० वीलिनाथन्)

प्रार्थना

किसान प्रार्थना कर रहा था, "हे ईश्वर ! यदि तू मेरे पास आ जाए, तो मैं तेरी बहुत सेवा करूं। अच्छे भोज्य-पदार्थ दूं। अपने हाथ से बिछौना बिछाकर सुलाऊं। तुम्हें खुद नहलाऊं और तुम्हारे सिर में कंघी करूं··· " रास्ता चलते हज़रत मूसा ने जब यह सुना, तो वे रुके और किसान से बोले, "तू किस से बात कर रहा है ?" किसान ने कहा, "ईश्वर से। मैं उनकी सेवा करना चाहता हूं।"

"मूर्ख, यह तो गुनाह कर रहा है तू। ईश्वर कहीं हमारी तरह होता है ? उसे कभी भूख लगती है ? वह कभी सोता है ? उसे किसी मनुष्य की सेवा की ज़रूरत नहीं। आगे से ऐसी मूर्खता न करना।"

बेचारे किसान ने हाथ जोड़कर मूसा से क्षमा मांगी।

परन्तु मूसा ने उस दिन जब शाम को प्रार्थना की, तो यह आकाशवाणी हुई, "मूसा, मैंने तुझे मनुष्यों का मन मुझ से लगाने के लिए भेजा था, न कि हटाने। किसान का मन मुझ में लगा था। उसे हटाकर तूने गुनाह किया है। अरे ! सच्चा भाव ही सच्ची प्रार्थना है।"

जन-सेवा

प्रख्यात रसायनशास्त्री आचार्य नागार्जुन को अपनी प्रयोग-शाला के लिए एक सहायक की आवश्यकता थी। इस कार्य

हेतु आचार्य की सेवा में दो प्रतिभावान् युवक उपस्थित हुए। आचार्य ने उनके व्यावहारिक ज्ञान की परीक्षा करने के लिए उन्हें कुछ विशेष पदार्थ दिये और कहा, "दो दिन में इनका रसायन तैयार करके मेरे पास लाओ।"

दो दिन पश्चात् दोनों युवक आचार्य की सेवा में उपस्थित हुए। एक युवक ने रसायन-पात्र आचार्य के समक्ष रख दिया किन्तु दूसरे ने क्षमायाचना करते हुए निवेदन किया, "आचार्य! जब मैं आपके दिये हुए पदार्थ के लेकर जा रहा था, तो मार्ग में मुझे ज्वर-तप्त एक वृद्ध पुरुष मिला। मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सका। मेरे दोनों दिन उसकी सेवा में ही व्यतीत हो गए। मैं लज्जा से अभिभूत हूं, आचार्य।"

आचार्य ने संघाधीश को आदेश दिया—"इसी युवक को सहायक नियुक्त किया जाए।" संघाधीश आश्चर्य से आंखें फाड़ आचार्य की ओर देखता रह गया। आचार्य मुसकराए और बोले, "मैं समझता हूं वत्स, तुम्हें क्यों आश्चर्य हो रहा है, किन्तु रसायन का प्राणी के जीवन से अधिक कोई महत्त्व नहीं। रसायन भी जनसेवा के लिए है।"

संघाधीश ने शीश नवाया और युवक को लेकर चला गया।

बासी भोजन

श्रावस्ती मृगार श्रेष्ठि बीस करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का स्वामी था। रात-दिन उसे अधिकाधिक धन-संग्रह की ही चिन्ता रहती।

लोक-परलोक, धर्म अथवा मोक्ष की परिभाषाओं से वह सर्वथा अनभिज्ञ था।

श्रेष्ठि की बहू विशाखा भगवान् बुद्ध के धर्म की अनुयायी थी। मृगार पर उसके गुणों की धाक थी। किन्तु धन-वैभव की मरीचिका के पीछे तृषित हिरन की भांति दौड़ने वाले श्वसुर को वह कैसे रोके, उसकी समझ में नहीं आता था।

मृगार श्रेष्ठि एक दिन भोजन करने बैठा तो विशाखा ने संकुचित स्वर में पूछा, "भोजन कैसा है, तात ? कोई त्रुटि तो नहीं ?"

"त्रुटि और विशाखा-सी चतुर बहू से ?" मृगार कौर चबाता हँस पड़ा, "तुम ऐसा क्यों सोचती हो, आयुष्मती! तुमने सदा ही ताजे भोजन से मुझे तृप्त किया है।"

"यही तो आप का भ्रम है, तात ?" विशाखा ने दृष्टि नीची कर कहा, "मैं आज तक आपको बासी भोजन ही परोसती रही हूं। मेरी प्रबल इच्छा है कि आपको ताजे व्यंजन खिलाऊं, किन्तु विवश हूं। आपके भण्डार में ताजे भोजन की व्यवस्था ही नहीं है।"

मृगार के हाथ का कौर हाथ में ही रह गया, "क्या कह रही हो, शुभे !"

विशाखा ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया, "यह जो आपके भण्डार में अन्न है, कोश में धन है, पशुशाला में गाएं हैं—सभी आपके पूर्वजन्म-कृत पुण्य का परिणाम है। इस जीवन में आप इन वैभवों को भोग रहे हैं, किन्तु ये बासी हैं। इस जन्म में आपका पुण्य-पुरुषार्थ मैंने देखा नहीं, अतः यह भोजन

बासी ही तो हुआ।"

विशाखा की बातें मृगार श्रेष्ठि के अन्तर को झकझोर गईं। वह धर्म एवं पुण्य संचय में प्रवृत्त हो गया।

(एक जातककथा)

प्रभु-प्रेम

सहसा कमरे में प्रकाश हुआ और एक फरिश्ता प्रकट हुआ। फरिश्ते के हाथ में एक सुनहरी किताब थी। उसने कहा, "मैं इस किताब में उन मनुष्यों के नाम लिखता हूं जो ईश्वर को प्यार करते हैं।"

यह सुन अबू-बिन-आदम ने कहा, "मेरा नाम उन लोगों में लिख लो जो अपने साथी मनुष्यों को प्यार करते हैं।"

फरिश्ता विलीन हो गया। दूसरी रात वह फिर प्रकट हुआ। उसके हाथ में वही सुनहरी किताब थी। उसमें ईश्वर को प्यार करने वालों के नाम लिखे थे। और अबू-बिन-आदम ने देखा कि उसका नाम सबके ऊपर है।

कर्मार्चन

सप्तद्वीप नवखण्ड पर एकछत्र राज्य करने वाले राजराजेश्वर ने अतुल भोग-वैभव और सत्ता-शौर्य को तृणवत् त्याग कर

परम निग्रही तपस्वी के रूप में सौ वर्ष की आयु तक आत्मतत्त्व की खोज की किन्तु निराशा के अतिरिक्त उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। एक दिन वे भूख से अति-पीड़ित चावल के एक खलिहान पर निकल गए। किसान देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, "आओ भिक्षु, लो, चावल पकाओ। आधा तुम खाना, आधा मैं।"

महाराज ने चावल पकाए। आधे किसान के दिये और आधे स्वयं खाए। थके तो वे थे ही, वहीं पेड़ की छाया में लेट गए। थोड़ी देर बाद क्या देखते हैं कि एक विराट् पुरुष उनके सामने खड़ा है, जिसके अंग-अंग से तेज टपक रहा है और जिसकी आकृति मानो समस्त पृथ्वी और आकाश को ढके हुए है। मीठी मुसकान के साथ उसने महाराज को सम्बोधन किया, "राजन्! मैं कर्म हूं—इस सृष्टि का परमतत्त्व। खोखली तपस्या में लीन तू मुझे खो बैठा था, आज श्रम की अर्चना द्वारा तूने मुझे प्राप्त किया है। आत्म-साक्षात्कार का यही तो मार्ग है। पहले तू मुझे—अपने कर्म को—पहचान। अपने भीतर उसका साक्षात्कार कर! पूजा की यह विधि ही परम तप है, शेष छल है, भ्रम है। जो मनुष्य के क्षण-क्षण के श्रम से विकसित नहीं, जो सांस का मूल्य बनकर आत्मा में समा न जाए, जो पसीने की बूंदों से अपना अभिषेक न करे, भला वह भी कोई उपासना है! उठो, कर्मेन्द्रियों के द्वारा आत्मा को आलोकित करो।"

दिव्यज्ञान का यह आलोक पाकर अज्ञान-मुक्त राजराजेश्वर परमपावन तथागत की तरह भूमण्डल में विचरने लगे।

(योन नागूची)

देहाभिमान

पंडित-प्रवीण रामनन्द स्नान-ध्यान से पवित्र घर लौट रहे थे। हृदय में भगवान् की प्रतिच्छवि थी और मुख में नाम-स्मरण। चलते-चलते एक गली के मोड़ पर आए तो उधर से आते एक कसाई से टकरा गए। भृकुटि तन गई और मुंह से अपशब्द निकलने लगे। कसाई ने क्षमा मांगी और किंचित् मुसकाराते हुए कहा, "मेरी देह के स्पर्श से क्या आपकी आत्मा कलुषित हो गई, भगवन् जो आप इतने विचलित हो गए?"

रामानन्द का अहंकार चूर-चूर हो गया। उनके हाथ से पोथी-कमण्डल नीचे गिर पड़े और उन्होंने कसाई को प्रेमपूर्वक गले लगा लिया।

आत्म-वंचना

महाराज ने वृद्ध राजशिल्पी को सभा में बुलाकर आदेश दिया: "नदी के दक्षिण तट पर एक ऐसा भवन बनाओ, जो सौन्दर्य और सुविधा की दृष्टि से राज्यभर में अद्वितीय हो।" और तत्काल ही महाराज की आज्ञा से भवन-निर्माण के निमित्त राजशिल्पी को सम्भावित धनराशि भी दे दी गई। इतनी धनराशि अपने अधिकार में देखकर शिल्पी का मन डोल गया। उसने सोचा, 'क्यों न घटिया और नकली सामग्री से ही भवन खड़ा कर दूं और इस रकम को बचाकर लाभान्वित हो जाऊं?' लोभ ने विवेक की आंखों को अन्धा बना दिया।

भवन तैयार हो गया। महाराज बड़े प्रसन्न हुए। भवन के उद्घाटन के लिए एक विशाल समारोह आयोजित हुआ। हर्षोत्फुल्ल चेहरे से महाराज उठे और जन-समूह की ओर उन्मुख होकर बोले, "आज मेरी एक बड़ी पुरानी साध पूरी हुई है। कई वर्षों से राजशिल्पी की एकनिष्ठ कर्तव्य-परायणता और राजभक्ति को मैं पुरस्कृत करना चाहता था। आज यह पुरस्कार तैयार हो गया है। अपने राज्य का यह सबसे सुन्दर, सुखद भवन मैं राजशिल्पी को पुरस्कार में देता हूं।"

इन शब्दों के साथ महाराज ने भवन की चाबियां शिल्पी के हाथों में सौंप दीं। महाराज के औदार्य ने सारे समाज को जय-जयकार से प्रतिध्वनित कर दिया।

हमारे ही अपने छल क्या हमें जीवन में इस प्रकार सैकड़ों बार नहीं छला करते हैं!

(राजगोपालाचारी)

विष-पान

यह घटना गांधी जी के अन्तिम दिनों की है। इसे मैं आजीवन नहीं भूल सकूंगा क्योंकि एक बड़ी भारी भूल से उन्होंने मुझे उस दिन बचाया था—ऐसी भूल जिसे नैतिक अधः पतन कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बात यों हुई कि एक दिन विधान-सभा के सभापतित्व को लेकर ऐसी

स्थिति पैदा हो गई, जो मुझे बड़ी अपमानजनक प्रतीत हुई। काफी तर्क-वितर्क के बाद भी जब मैं उसे दर-गुजर नहीं कर सका, तो मैंने विधान-सभा के सभापतित्व से त्यागपत्र देने का निश्चय कर लिया। किन्तु साथ ही यह विचार भी मन में आया कि ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग के बारे में ऐसा निर्णय कार्यान्वित करने से पूर्व एक बार गांधी जी से परामर्श कर लूं। अतः मैंने उनसे सब बातें कहीं। त्यागपत्र का प्रारूप भी उन्हें दिखलाया। स्थिति के सारे विवरण और तदनुरूप मेरे दृष्टि-कोण को उन्होंने सही बताया। किन्तु त्यागपत्र का निर्णय उन्हें नहीं जँचा। वे कुछ गंभीर हो गए और कहने लगे, "तुम्हारे स्थान पर यदि दूसरा कोई होता, तो त्यागपत्र देने से मैं उसे कभी नहीं रोकता। किन्तु तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। अपने व्यक्तित्व की बात सामने लाकर तुम्हारा त्याग-पत्र देना उचित नहीं है। सार्वजनिक कार्यों में अपमान भी सहना चाहिए। व्यक्ति के मानापमान का वहां प्रश्न ही क्यों उठे?"

उनकी उद्दीप्त आंखों ने मुझे जो बाकी बचा था, वह भी समझा दिया। मेरे अन्तःकरण को एक तीव्र दंश लगा। कितनी क्षुद्र अहंमन्यता में फंसकर मेरा अधःपतन हो रहा था! जब व्यक्ति सार्वजनिक कार्यों में अपने जीवन-प्रवाह को नियोजित कर देता है, तो उसके वैयक्तिक चैतन्य पर उसका अधिकार ही क्या! सेवा-कार्य में भी मानापमान का खयाल तो अधर्म ही है।

मेरे एक मित्र को भी इस प्रसंग की जानकारी थी। जब उन्होंने गांधी जी से इस विषय की चर्चा की तो उन्हें गांधी जी

ने कहा ,"जहर का प्याला पीने वाला कम से कम एक व्यक्ति भी तो रहे, जिसके होंठों पर मैं उसे लगा सकूं।"

(स्वर्गीय डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का एक संस्मरण)

हृदयों पर अधिकार

एक था सेठ। उसके थे दो बेटे। सेठ ने दोनों को उपदेश दिया कि तुम दुनिया भर में अपनी कोठियाँ बनाओ।

अब एक लड़का तो सचमुच जगह-जगह कोठियां बनाने लगा। आखिर कहां तक कोठियाँ बनाता? वह थक गया। उसका धन भी जवाब दे गया।

दूसरा लड़का अधिक बुद्धिमान था। उसने कोठियाँ बनाने की अपेक्षा जगह-जगह मित्र बनाने आरंभ किये। इसमें वह जरा भी नहीं थका और अपने भाई से बहुत आगे निकल गया, क्योंकि मित्रों की कोठियों के द्वार उसके लिए सदा खुले रहते थे!

(श्री कन्हैयालाल मुंशी)

पुरुषार्थ

"उठो प्रिय, आंधी और सागर का प्रबल वेग सारे गांव को खा जाना चाहता है। देखो, अपनी जर्जर खाट भी पूरी तरह भीग

चुकी है उठो, कहीं दूसरे सुरक्षित स्थान में चलें।" पत्नी ने पति से कहा।

"नहीं प्रिये, दुर्दैव से भागकर कोई जाएगा ही कहां! आओ, यहीं बैठकर अन्तिम प्रार्थना करें।" पति ने विरक्ति-पूर्वक कहा।

"नहीं, यह कायरता है। कल की याद करो, अगर हम उस पुरानी झोंपड़ी से भागकर यहां नहीं आते तो क्या मृत्यु अभी तक हमें दबोच न लेती? दैव ने हमारी रक्षा तो तब की जब हम अपनी रक्षा के लिए स्वयं उद्यत हो गए।"

पत्नी ने हताश बैठे पति का हाथ पकड़ा और उसे भूमि से ऊपर उठाया।

(महाकवि भारती)

खाली हाथ कैसे लौटा दे?

एक बार महाराज रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे कि सामने से एक ईंट आकर उन्हें लगी। सिपाहियों ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, तो एक बुढ़िया दिखलाई पड़ी। उसे बन्दी बनाकर महाराज के सामने उपस्थित किया गया।

बुढ़िया महाराजा को देखते ही डर के मारे कांप उठी। बोली, "सरकार, मेरा बच्चा कल से भूखा था। घर में खाने को कुछ था नहीं। पेड़ पर पत्थर मार रही थी कि कुछ बेर झड़ें

तो उसे खिलाऊं। वह पत्थर भूल से आपको जा लगा। मैं निरपराध हूं महाराज, मुझे क्षमा किया जाए।"

महाराज चिन्ता में पड़ गए। थोड़ी देर बाद बोले, "बुढ़िया को एक हजार रुपए देकर ससम्मान छोड़ दिया जाए।"

कर्मचारियों ने आश्चर्य से पूछा, "महाराज, जिसे दण्ड मिलना चाहिए, उसे रुपए ?"

महाराज बोले, "यदि वृक्ष पत्थर लगने पर मीठा फल देता है, तो पंजाब का महाराज उसे खाली हाथ कैसे लौटा दे ?"

अन्न की महिमा

ब्रह्मविद्या की दीक्षा देते हुए कुलपति उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा, "सौम्य, पन्द्रह दिन तक कुछ मत खाओ।"

पिता की आज्ञानुसार पन्द्रह दिन निराहार रहकर श्वेतकेतु पिता के पास आया। उसने पूछा, "देव, क्या आज्ञा है ?"

पिता ने आज्ञा की, "सौम्य ! ऋक्, यजु और साम के मंत्र सुनाओ।"

पुत्र ने हताश वाणी में कहा, "देव, क्षमा करें, मैं सभी मंत्र भूल गया हूं।"

तदनन्तर पिता की आज्ञानुसार श्वेतकेतु ने भोजन किया और सारे वेद-मंत्र उसकी जिह्वा पर उतर आए।

तब पिता ने श्वेतकेतु से कहा,"सौम्य, हमारा यह मन अन्नमय है। अन्न के अभाव में उसकी गति कहाँ ?"

(छान्दोग्य उपनिषद)

मान-मर्यादा

दो पहाड़ थे। एक था ऊंचा और एक था नीचा। ऊंचे पहाड़ पर लोग सदा घूमने आते थे और उसकी प्रशंसा करते थे। छोटे पहाड़ को यह बहुत बुरा लगता थी। वह सदा अपनी स्थिति से असन्तुष्ट रहता।

एक दिन भूकम्प आया और बोला, "अपनी परिस्थिति से कौन असन्तुष्ट है ?"

छोटा पहाड़ आगे आया और बोला, "मैं। मुझे इतना बड़ा कर दो कि इस ऊंचे पहाड़ के समान मेरी मान-मर्यादा हो जाए।"

भूकम्प ने उस पहाड़ की धरती सपाट कर दी। पहाड़ को बड़ा दुःख हुआ। उसने सोचा, 'पहले तो एक मर्यादा भी थी, अब वह भी न रही।'

पर एक दिन किसान अपना हल-बैल लेकर उसे जोतने आया और तब उस दिन उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

(कु०गो०)

धन के दास मत बनिये

देवों और दानवों में घोर संग्राम हुआ। देवता पराजित हुए। देवता भागकर भगवान् दत्तात्रेय की शरण में गए और विजय का उपाय पूछा। उन्होंने कहा, "निराशा छोड़कर बारम्बार प्रयत्न करो।"

देवता फिर लड़े और फिर हार गए। दानव उन भागते देवों का पीछा करने लगे। देवता भागकर भगवान् दत्तात्रेय के पास पहुंचे। पीछे-पीछे दानव भी चले आ रहे थे। दत्तात्रेय लक्ष्मी के साथ मग्न बैठे हुए थे। दानवों ने लक्ष्मी को देखा तो मोहित हो गए। उन्होंने लक्ष्मी को उठाया, पालकी में बिठाया और कन्धों पर उठाकर ले गए।

तब दत्तात्रेय ने अपने नेत्र खोले और हँसकर कहा, "देवताओ, अब तुम्हारी विजय निश्चित है। क्योंकि लक्ष्मी उन लोगों के सिर पर सवार होकर गई है। अब उनका सम्पूर्ण बल-बुद्धि-विवेक नष्ट हो जाएगा। वे भोग-विलास में डूब जाएंगे। उनमें एकता भी नहीं रहेगी। सब स्वार्थान्ध होकर सम्पत्ति पर मात्र अपना अधिकार चाहेंगे।

"अर्थ से स्वार्थ उत्पन्न होता है और स्वार्थ से अनर्थ। लक्ष्मी किसी की नहीं है। वह तो इन मूर्खों को विपत्ति में डालकर चली जाएगी।"

यही हुआ भी।

जिस सिर पर लक्ष्मी को चढ़ाकर उन्होंने अनर्थ मोल

लिया था, अब उसी को पीट-पीटकर अपनी भूल पर पछताने लगे।

(पुराणकथा)

अहंकार

व्यासजी जब अपने ज्ञान-गंभीर पुत्र शुकदेवजी की ब्रह्म-जिज्ञासाओं का समुचित समाधान नहीं कर पाए, तो उन्होंने उन्हें ज्ञान प्राप्त करने के लिए राजर्षि जनक के पास भेज दिया।

सुमेरु पर्वत से नीचे उतर और कई नदी-नद एवं वन-वनांतर पार कर कठिन यात्रा के पश्चात् शुकदेवजी जनक-पुर पहुंचे। राजद्वार पर पहुंचते ही द्वारपाल ने राजा को खबर दी, "देव, स्वयं व्यास-पुत्र शुकदेव आपसे भेंट करने के लिए द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।" जनक ने अपनी कार्य-व्यस्त दृष्टि एक क्षण के लिए ऊपर उठाई और आदेश दिया, "अभी हमें समय नहीं है। शुकदेवजी को अतिथिशाला में ठहराने की व्यवस्था कर दो। एक सप्ताह बाद हम उनसे मिलेंगे।"

सातवें दिन शुकदेव जी राजसभा में पहुंचे, तो उन्होंने देखा, महाराज इतने व्यस्त हैं कि उन्हें दृष्टि ऊपर उठाने का भी अवकाश नहीं है। अगले सात दिन तक राजर्षि इसी

प्रकार कार्य-निमग्न रहे । शुकदेव जी नित्य राजसभा में जाते और राजा से बिना मिले ही वापस लौट आते । आठवें दिन महाराज जनक ने मंत्री को बुलाकर कहा, "ऐसा करो कि शुकदेवजी को हमारे अन्तःपुर में ही ठहरा दो, तो वहां समय निकालकर उनसे भेंट की जा सकेगी ।" आज्ञा का तत्काल पालन किया गया । शुकदेवजी को देव-दुर्लभ भोग-विलासों से सुसज्ज रंगमहल में ठहराया गया । किन्तु यहां भी राजा का साक्षात् प्राप्त किये बिना ही शुकदेवजी को एक पखवाड़ा बीत गया ।

आखिर सोलहवें दिन जनक स्वयं उनके पास आए और स्नेहसिक्त वाणी में बोले, "महामुनि, ब्रह्मज्ञान के जिन जटिल रहस्यों को पूछने के लिए आप मेरे पास आए हैं, उनका समाधान तो स्वयं आपके आचरण में हो चुका है। अब शब्दों द्वारा उनके उद्‌घाटन की क्या आवश्यकता ? हमारा अहम् ही सारे प्रपंचों का सूत्रधार है । जिसने इस अहम् को अन्तर्लीन कर लिया, वही जीवन-मुक्त हो गया, उसके लिए योग और भोग समरस हैं । दोनों में उसे ब्रह्मानन्द का ही आस्वाद मिलता है । मैंने स्वयं परीक्षा करके देख लिया है । आप आकांक्षा और उपेक्षा के प्रति पूरी तरह विदेह हो चुके हैं । बस, यही क्रम सदा बनाए रहिये ।"

जनक के मर्मभरे वचनों ने शुकदेवजी के मन की रही-सही गुत्थियां भी सुलझा दीं । वे तपस्या के लिए सुमेरु पर्वत लौट गए और इस संकल्प में लीन होकर समाधि का अभ्यास करने लगे ।

"देवाधिदेव, जिस प्रकार समुद्र के अगाध जल-समूह में जल का प्रत्येक कण विलीन हो जाता है, उसी प्रकार मेरा अहम भी आप में विलीन हो जाए।"

(महोपनिषद् से)

सत्य और असत्य

सत्य और असत्य नामक दो बहनें थीं। एक दिन ये दोनों नदी नहाने गईं। असत्य नहाकर बाहर निकली और सत्य के कपड़े पहनने लगी। सत्य ने पूछा भी—"मेरे कपड़े क्यों पहन रही है?"

किन्तु असत्य सत्य के कपड़े पहनकर चलती बनी। सत्य बेचारी थोड़ी देर तो खड़ी-खड़ी सोचती रही और फिर लाचार हो उसे असत्य का कपड़ा पहन लेना पड़ा। सभ्य संसार में भला नग्न कैसे रहा जा सकता है!

और तभी से यह देखा जाता है कि जब मनुष्य में सत्य-असत्य परखने का विवेक नहीं होता तब वह सत्य का बाना पहने हुए असत्य को सत्य मान लेता है और सत्य सिर धुनता रह जाता है।

(विक्टर ह्यूगो)

सहनशीलता

सत्रहवीं शताब्दी। जापान के तत्कालीन राज्यमंत्री ओ-चो-सान का परिवार अपनी सहृदयता के लिए समूचे देश में प्रसिद्ध था। उनका परिवार बहुत बड़ा था। कोई एक हज़ार लोग उस परिवार में थे। यह संयुक्त परिवार था। कलह का प्रवेश इस परिवार में कभी नहीं हुआ।

इस परिवार की सज्जनता की कहानी जापान के सम्राट् यामातो तक पहुंची। इसकी सत्यता की परीक्षा लेने सम्राट् स्वयं यामातो के घर पधारे।

कुछ देर बाद सम्राट् ने मंत्री से पूछा, "महाशय! आपके परिवार के सदस्यों की सज्जनता की ख्याति सारे देश में फैल रही है। क्या आप बताएंगे कि इतने बड़े परिवार के सभी सदस्यों के इस प्रकार के सज्जनोचित व्यवहार का क्या रहस्य है?"

ओ-चो-सान बहुत बूढ़े हो गए थे। बोलने में भी उन्हें कष्ट होता था। उन्होंने संकेत से अपने पौत्र को कागज़-कलम लाने के लिए कहा। उन्होंने अपने कांपते हाथों से कागज पर कई शब्द लिखे और कागज सम्राट् की ओर बढ़ा दिया।

सम्राट् ने बड़ी उत्सुकता से कागज को पढ़ना प्रारंभ किया। पर इसमें तो बार-बार एक ही शब्द लिखा हुआ था—'सहनशीलता'

मीठा गप्प : कड़वा थू

एक दिन किसी मनुष्य के बगीचे में एक गाय घुस आयी और उसने कई बढ़िया पौधे चर डाले। इस पर यह मनुष्य बहुत क्रुद्ध

हुआ और उसने गाय को इतना मारा कि वह मर गई। गाय के मरने से गोहत्या का कलंक लगने की बात सोचकर उसने कहा, "मैंने गाय को कब मारा ! इसका दोषी तो मेरा हाथ है और क्योंकि हाथ इन्द्र देवता के अधीन है, इसलिए सारा दोष इन्द्र का है।"

इन्द्र ने जब यह सुना तो एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर, ब्राह्मण के पास जाकर पूछा, "क्यों भाई, ये एक से एक सुन्दर फल-फूलदार पौधे किसने लगाए ?"

वह मनुष्य बड़े उत्साह से बोला, "मैंने ही ये सब लगाए हैं।"

फिर इन्द्र ने मरी हुई गाय की ओर संकेत करके पूछा, "यह गाय किसने मार डाली?"

मनुष्य बोला, "इन्द्र ने।"

यह सुनकर इन्द्र हँसे और बोले, "जो अच्छा किया वह तूने और जो बुरा हुआ वह इन्द्र से। इस तरह तुम दूसरों को धोखा नहीं दे सकते। यह आत्म-वंचना है।"

परमात्मा का धन्यवाद

एडिन बर्ग के सुप्रसिद्ध धर्मोपदेशक डॉ० अलेक्जैन्डर ह्वाइट जब कभी प्रार्थना-सभा में आते तो प्रार्थना आरंभ करने के पूर्व किसी न किसी बात के लिए परमात्मा का धन्यवाद अवश्य करते।

एक बार जब वे प्रातः की प्रार्थना के लिए प्रार्थना-सभा में आए तो हड़कम्प पैदा करने वाली सर्दी पड़ रही थी।

बहुत से लोग बुरी तरह ठिठुर रहे थे और ऐसे मौसम के लिए परमात्मा को कोस रहे थे।

लोगों ने सोचा, आज डाक्टर ह्वाइट को परमात्मा का धन्यवाद करने के लिए कोई बात नहीं मिल सकेगी।

पर डाक्टर ने सदा की भांति प्रार्थना प्रारंभ करने से पहले आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा, "हे प्रभु! तुम्हारा हम किन शब्दों में धन्यवाद करें कि तू सदा मौसम खराब नहीं रखता।"

उचित शैली

स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से अनेक कर्मवीर भारतीय वेदान्त के प्रचार के लिए अमेरिका जाते थे। एक दिन एक संन्यासी बहन निवेदिता के पास आए तथा वेदान्त-प्रचार की प्रणालियों पर जिज्ञासा की। बहन निवेदिता ने एक क्षण सोचा, फिर संन्यासी से एक चाकू देने की प्रार्थना की, जो उनके पास रखा हुआ था। संन्यासी ने तुरंत ही चाकू को धार वाले भाग से पकड़ कर काठ वाला भाग बहन निवेदिता की ओर बढ़ा दिया।

"बिलकुल ठीक।" बहन निवेदिता बोली, "विदेश में कार्य करने की उचित शैली यही है। संकटों के सामने स्वयं रहो तथा सुरक्षित भाग दूसरों के लिए छोड़ दो।"

(स्वामी संबुद्धानन्द)

फलोचित साधना

महर्षि कश्यप की पत्नी विनता चाहती थीं, महासत्त्व संतान। इसी से उसे एकाधिक डिम्ब दिए गए। पर जब बहुत दिन बीत जाने पर भी बालक का जन्म नहीं हुआ तो उसने डिम्ब फोड़ डाला। फलस्वरूप आधे ही शरीर का बालक निकला। यही था अरुण जो बाद में सूर्य का सारथी बना। उसने माता से क्रोध के साथ कहा, "तुम महासत्त्व संतान तो चाहती हो, पर महाप्रतीक्षा नहीं कर सकतीं।"

अन्तर का नारायण

स्वर्ग में समारोह मनाया जा रहा था, वसन्त के आगमन का। भगवान् विष्णु और लक्ष्मी मंच पर विराजमान थे। सहसा भगवान् विष्णु उठे और कहीं चले गए। उनका इस तरह बीच में से चुपचाप उठकर चला जाना देवी लक्ष्मी को अखरा।

भगवान् तुरन्त लौट आए। लक्ष्मी ने किंचित् क्रोध के साथ पूछ लिया कि आप कहाँ चले गए थे।

भगवान् विष्णु बोले, "देवि, मर्त्यलोक में एक भक्त पर संकट आ गया था। उसी की पुकार पर जाना पड़ा।"

देवी लक्ष्मी बोलीं, "मुझे भी साथ लेते जाते। संभवतः मैं भी कुछ सहयोग कर पाती।"

भगवान् विष्णु मन्द स्मित के साथ बोले, "देवि, मेरे पहुंचने से पूर्व उसके अन्तर का नारायण जाग उठा था और उसका संकट टल चुका था।"

जंगम तीर्थ

मिस्र के काहिरा शहर में एक बार स्वामी विवेकानन्द रास्ता भूल गए और भटकते-भटकते वेश्याओं के मुहल्ले में जा निकले। वेश्याओं ने ग्राहक समझकर उनको बुलाया। स्वामी जी निस्संकोच उनके पास गए। किन्तु उन तक पहुंचते उनके अन्तर्यामी की करुणा आंखों से टपकने लगी थी। रुद्ध कंठ से अपने साथियों को सम्बोधित करके स्वामी जी बोले, "ये ईश्वर की हतभाग्य सन्तानें हैं। शैतान की उपासना में भगवान् को भूल गई हैं।"

स्वामी जी के इस करुणा-विह्वल दिव्य रूप को देखकर वेश्याएं भी फूट-फूटकर रोने लगीं।

कुछ समय पश्चात् उन्हीं वेश्याओं की अपनी सम्पत्ति से वहां एक सुन्दर सड़क, पार्क, मठ और एक महिलाश्रम भी निर्मित हो गया।

(श्रीमती कैलमे की 'आत्मकथा' से)

त्याग

अपने जिज्ञासु पुत्र कच के बार-बार पूछने पर देवाचार्य बृहस्पति ने कहा, "वत्स, त्याग ही परम कल्याण का साधन है। तू त्याग का व्रत ले।"

किन्तु सर्वस्व त्याग देने पर भी जब कच को परमानन्द की प्राप्ति न हुई तो वह फिर अपने पिता देवाचार्य बृहस्पति के पास पहुंचा।

देवाचार्य कच की समस्या को भली-भांति समझ गए। वे मन्द स्मित के साथ बोले, "तात्, त्याग का अर्थ वस्तु का त्याग नहीं, उस वस्तु सम्बन्धी ममत्व का त्याग है। जब तक जीवन है, वस्तु की अपेक्षा तो अनिवार्य है। अतः वस्तु त्याज्य नहीं, त्याज्य है वस्तु की भोग-वासना, उसकी संग्रह-लिप्सा।"

('अपरोक्षानुभूति' से)

ज्ञानार्जन

भारद्वाज मुनि ने जीवन भर तपस्या की। शरीर-त्यागकर जन्म लेने के बाद दूसरी जीवन अवधि भी उन्होंने तपस्या में क्षीण कर दी। किन्तु ज्ञानार्थियों के अन्तर्यामी को विश्रान्ति कहां? परिपूर्ण परितोष के बिना आत्मा की भूख शान्त कैसे हो? भारद्वाज मुनि ने तीसरा जन्म लिया। इस बार भी वे तप करने लगे। मुनि की इस संकल्प परम्परा को देख इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे प्रकट हुए। पूछा, 'मुनिवर, यह जन्म-जन्मान्तरों की तपस्या किसलिए?" भारद्वाज ने ध्यानावस्थित भाव से ही कहा, "यह तपस्या ज्ञानार्जन के लिए है, देव।" परम तुष्टि की मुद्रा में इन्द्र ने फिर पूछा, "मुनि-श्रेष्ठ, यदि आपको एक जन्म और मिले तो उसमें क्या करेंगे!" भारद्वाज ने पूर्ववत् सहज भाव से कहा, "वह जन्म भी ज्ञानार्जन के लिए तपस्या में बिताऊंगा।"

न्याय

च्वांग और कु नामक दो आदमियों ने एक अमीर के यहां नौकरी की। काम दोनों को एक ही मिला--भेड़ें चराने का। दोनों एक साथ भेड़ें लेकर चरांगाह में जाते और शाम को एक साथ लौटते। इधर प्रतिदिन भेड़ों की संख्या में कमी होने लगी। एक दिन अमीर ने दोनों की जासूसी की। देखा, च्वांग भेड़ों को छोड़कर एक पेड़ की छाया में बैठा पुस्तक पढ़ रहा है और कु कुछ दोस्तों के साथ जुआ खेल रहा है। अमीर ने दोनों को नौकरी से निकालने का निश्चय किया। परन्तु दोनों के चारित्रिक अन्तर ने पूर्व-निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए उन्हें बाधित किया। वे कन्फ्यूशस के पास अपनी दुविधा लेकर पहुंचे। कन्फ्यूशस ने उत्तर दिया, "भाई, मानता हूं, एक विद्या-रसिक है और दूसरा जुआरी--दोनों के चरित्र में आकाश-पाताल का अन्तर है पर दोनों अपने कर्तव्य के प्रति समान रूप से उदास हैं। अतःनिश्चय ही दोनों को समान दण्ड मिलना चाहिए।"

दुर्लभ शरीर

एक मछुआ प्रातः से सायं तक नदी में जाल डालकर मछलियां पकड़ने का प्रयास करता रहा। किन्तु एक भी मछली जाल में न फंसी। सूर्यास्त के साथ उसके तन-मन पर भी नैराश्य की छाया गहरी होने लगी। भगवान् का नाम

लेकर उसने एक बार और जाल डाला। किन्तु मछलियां इस बार भी न आयीं। हां, एक वजनी पोटली जरूर उसके पांव में आ अटकी। डुबकी लगाकर मछुए ने पोटली उठा ली। टटोला—'हाय, ये भी पत्थर हैं।' बड़ा झुंझलाया। मन मारकर नाव में चढ़ा।

ठंडी-ठंडी बयार में नाव थिरकती चली जा रही थी। प्रकृति के उल्लास ने कुछ ही क्षणों में मछुए के मनस्ताप पर काबू पा लिया। नई-नई मोहक आशाएं मानस पर उतरने लगीं, 'कल दूसरे तट पर जाऊंगा। वहां तो इस वर्ष अभी तक कोई मछुआ गया ही नहीं है। पूरे सौ रुपये की मछलियां पकड़ूंगा। महीने भर में उस तट की सारी मछलियां पकड़ लूंगा। चार-पांच हजार की मछलियां होंगी। रात में छिपकर जाल डालूंगा...' मन के इस गतिमय तुरंग के साथ हाथ भी निश्चेष्ट नहीं थे। पोटली के एक-एक-पत्थर को वह लहरों पर फेंकता जा रहा था। थोड़े समय में पोटली खाली हो गई। केवल आखिरी पत्थर बच गया। संयोग से, उसकी दृष्टि उस पत्थर पर पड़ी। ध्यान से देखा, फिर देखा। हठात् जोर से मुट्ठी बांध ली, वह तो नीलम था। मछुए ने अपनी छाती पीट ली।

संसार की आशा-निराशा में विक्षिप्त की तरह उलझे मनुष्य को भी एक दिन यह मनुष्य-शरीर खोकर इसी प्रकार पछताना पड़ता है।

(महर्षि रमण)

महान् आत्मा

एक बार जब हजरत अली नमाज पढ़ रहे थे, तो एक दुष्ट ने उन पर तलवार से वार किया किन्तु तब तक मस्जिद में इकट्ठे और लोगों ने देख लिया और उसे पकड़कर अली के सामने पेश किया। इस समय एक आदमी अली के लिए शरबत लेकर आया। उन्होंने मुश्क बंधे खूनी की ओर करुण दृष्टि से देखते हुए कहा, "भाई, यह शरबत उस गरीब को दे दो। दौड़-धूप में यह बहुत थक गया है।"

('लोक-जीवन' से)

आत्म-निरीक्षण

एक लड़का अपने पड़ोस की एक दूकान में गया और दूकान के मालिक से अनुमति मांगकर टेलीफोन करने लगा। दूकान-दार लड़के की भद्रता से इतना प्रभावित हुआ कि वह उसकी बातें सुनने का मोह संवरण नहीं कर सका। लड़के ने फोन पर कहा, "हलो, आप डाक्टर ब्राउन हैं!... हां डाक्टर साहब, अब की गर्मी में आपकी फुलवारी की देख-रेख करने के लिए कोई लड़का नहीं चाहिए?...अच्छा, आपने रख लिया है?...वह लड़का कैसा है, अच्छा काम करता है?...बहुत अच्छा, पूर्ण विश्वास है आपको? ठीक है। धन्यवाद।" कहकर लड़का लौटने लगा। दूकान के मालिक ने सहानुभूतिपूर्वक पूछा, "क्यों बच्चे! तुम्हें काम

नहीं मिला?" लड़के ने नम्रता के साथ कहा, "काम तो मैं करता ही हूं, केवल अपने काम के बारे में जांच कर रहा था कि मालिक मेरे काम से प्रसन्न हैं या नहीं।"

आखिरी ढेला

थकान से चूर और असफलता से हताश रेफिल सोलानो नदी की सूखी तलहटी में एक चट्टान से टिककर बैठ गया और अवसाद के विषण्ण स्वर में अपने अन्य दो साथियों को बुलाकर कहने लगा, "मैं तो यहां की इस खोज से ऊब गया हूं। अभी तक मैंने इतने ढेले बटोरे हैं कि यदि एक और बटोर लूं तो उनकी संख्या दस लाख हो जाए। किन्तु दुर्भाग्य की हद हो गई, कि इन लाखों ढेलों में से हीरे का एक कण भी नहीं मिला। अतः जब भाग्य में रोना ही बदा है तो इस प्रकार खून-पसीना एक करने से क्या लाभ?"

रेफिल सोलानो और उसके दोनों साथी कई महीनों से असह्य धूप और आंधी-तूफान में हीरे की खानें तलाश रहे थे। तलहटी के प्रत्येक ढेले को हाथ में लेकर वे ध्यान से देखते और फिर निराश होकर उसे एक ओर फेंक देते। इन्हीं असंख्य ढेलों के भीतर हीरे ढूंढ निकालने का दृढ़ संकल्प उनकी टिमटिमाती हुई आशा-ज्योति को जीवित रखे था।

दुर्गन्धित चिथड़ों के भीतर उनका मैला शरीर अपनी अस्थियों में झांकने लगा था और अनवरत परिश्रम तथा सूर्य के प्रखर उत्ताप से उनकी आंखें सूज गई थीं। किन्तु उनके

निश्चय में अभी तक कोई शैथिल्य नहीं आया था।

यही कारण था कि आज सोलानो को इस प्रकार डांवा-डोल होते देखकर एक साथी ने परिहास में कहा, "भाई सोलानो ! इतनी-सी कसर क्यों रह जाए ? एक ढेला और बटोरकर तुम उनकी संख्या दस लाख क्यों नहीं कर देते?"

सोलानो ने उस साथी के व्यंग्य का उत्तर देते हुआ कहा, "स्वीकार है, किन्तु मैं एक ही ढेला और उठाऊंगा दूसरा नहीं।"

अतः उसने और एक ढेला—केवल एक ही ढेला—उठाया किन्तु यह पत्थर तो कुछ अधिक भार वाला प्रतीत हुआ—साधारण ढेलों से कई गुना अधिक भार वाला। उसने एक बार ध्यान से इस चमकदार ढेले की ओर देखा और प्रसन्नता से चिल्ला उठा, "साथियो, यह तो हीरा है । ओह, हमें हीरे की खान मिल गई !"

तीसरे दिन न्यूयार्क के एक जौहरी की दूकान में सोलानो का वह 'आखिरी ढेला' दो लाख डालर में बिका।

बन्धुओ, जब निरन्तर निराशा और असफलताओं से आप भी जीवन में पराजित होने लगें और मैदान छोड़कर भागने की सोचने लगें, तो क्षणभर रुककर सोलानो के आखिरी ढेले का स्मरण कीजिए।

(श्री डब्ल्यू०जी०मांटगुमरी)

बन्धन

पतंग उड़ते-उड़ते आकाश में बहुत दूर पहुंच गई। उसी के ऊपर एक गरुड़ उड़ानें भर रहा था। पतंग को लगा, यदि मैं

धागे से मुक्त हो जाती तो मैं भी इतनी दूर और इतनी ही स्वच्छन्दता से उड़ानें भरती।

बस, भावना के क्षणिक आवेश में पतंग ने अपने को धागे से मुक्त कर लिया। एक क्षण को वह ऊपर गई अवश्य, किन्तु तुरंत इस तरह बेतहाशा नीचे की ओर गिरी कि उसका फिर पता ही नहीं चला।

('मंजरी' से)

संकीर्ण दृष्टि

चू प्रदेश के राजकुमार का धनुष एक बार शिकार में खो गया। सैनिकों ने कहा, "आज्ञा दीजिए, तो हम लोग उस धनुष को कहीं न कहीं से खोजकर ला देंगे।"

राजकुमार ने कहा, "नहीं भाई, क्या आवश्यकता है! धनुष इसी चू प्रदेश के ही किसी मनुष्य के पास होगा। चलो, देश की वस्तु देश के ही किसी व्यक्ति के पास है न।"

इस घटना को जब सन्त कन्फ्यूशस ने सुना, तो कहा, "राजकुमार की दृष्टि संकीर्ण है। नहीं तो वह कहते, "चलो एक मनुष्य की वस्तु किसी मनुष्य के ही पास है न।"

जीवन

'जीवन क्या है?' एक जिज्ञासु के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महात्मा टालस्टाय ने एक कहानी सुनाई—

'एक बार एक यात्री जंगल-पथ से चला जा रहा था। अकस्मात् एक जंगली हाथी उसकी ओर झपटा। बचाव का अन्य कोई उपाय नहीं देख वह मार्ग के एक कुएं में कूद पड़ा। कुएं के बीच में बरगद का एक पेड़ था। यात्री उसी की एक लटकी जड़ को पकड़कर लटक गया।

कुछ देर बाद उसकी दृष्टि कुएं में नीचे की ओर गई—कदाचित् वहां त्राण की कोई युक्ति दिखाई दे जाए। किन्तु वहां तो साक्षात मौत ही खड़ी थी—एक विकराल नाग उसके नीचे टपकने की बाट जोह रहा था। भय-कंपित निरुपाय आंखें ऊपर की ओर गईं, देखा मधु के एक छत्रक से बूंद-बूंद मधु टपक रहा था। स्वाद के सामने वह भय को भूल गया। उसने टपकते हुए मधु की ओर बढ़कर अपना मुंह खोल दिया और तल्लीन होकर बूंद-बूंद मधु पीने लगा।

किन्तु यह क्या ? उसने आश्चर्य के साथ देखा, वट-वृक्ष की जिस शाखा को पकड़कर वह लटका हुआ था, उसे एक सफेद और एक काला चूहा कुतर रहे थे।'

जिज्ञासु की प्रश्नसूचक मुद्रा देख महात्मा टालस्टाय ने कहा, 'नहीं समझे तुम ? वह हाथी काल है। नाग मृत्यु। मधु जीवन-रस और काला तथा सफेद चूहा दिन और रात। इन सबका सम्मिलित नाम ही जीवन है।'

स्थितप्रज्ञ

स्वामी विवेकानन्द एक बार कहीं की रेलयात्रा कर रहे थे। उस डिब्बे में दो अंग्रेज यात्री भी थे। इस गेरुआ वस्त्र-

धारी भारतीय के बारे में दोनों जितना बुरा-भला हो सका, बोलते रहे। इतने में एक स्टेशन आया। स्वामी जी ने स्टेशन मास्टर को बुलाकर अंग्रेजी में कहा, "कृपया थोड़ा पानी मंगा दीजिए।"

उन्हें अंग्रेजी बोलते देख दोनों अंग्रेज यात्री सकपकाए। उनमें से एक ने स्वामी जी से पूछा, "आप अंग्रेजी जानते हैं, फिर हम जब आपके सम्बन्ध में बातें कर रहे थे, आप कुछ बोले क्यों नहीं! क्या आपको क्रोध नहीं आया?"

स्वामी विवेकानन्द ने हंसते-हँसते कहा, "मित्रो, आप जैसे पुरुषों के सम्पर्क में आने का मेरा यह प्रथम अवसर नहीं है। फिर निर्बुद्ध लोगों पर क्रोध करके मैं अपनी शक्ति क्यों व्यर्थ खर्च करूँ?

(बंगला 'भारतवर्ष' से)

अपराध और दण्ड

न्यूयार्क के एक प्रसिद्ध मेयर लागार्डिया को जो अपनी सहृदयता और सुप्रबन्ध के लिए विख्यात थे, पुलिस के मुकदमों में बड़ी रुचि थी; क्योंकि उनके विवरण से उन्हें नगर की वास्तविक स्थिति का पता चल जाता था। इसलिए वे प्रायः पुलिस अभियोगों की अध्यक्षता किया करते थे।

एक दिन पुलिस ने एक चोर पर अभियोग चलाया कि उसने एक रोटी चुराई है। अभियुक्त ने अपने बचाव में केवल एक ही वाक्य कहा, "मेरा परिवार भूखा था, अतः मैं चोरी

करने के लिए विवश था।" मेयर ने अपना निर्णय सुनाया, "चोरी के अपराध में मैं अभियुक्त पर दस डालर जुर्माना करता हूँ।" और अपनी जेब से दस डालर निकालकर अभियुक्त को दे दिये जिससे वह जुर्माना भर सके। फिर उन्होंने उपस्थित लोगों से कहा, "साथ ही न्यायालय में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति पर मैं पचास सेंट जुर्माना करता हूँ, क्योंकि वह एक ऐसे समाज में रहने का महान् अपराध करता है, जिसमें एक मनुष्य को विवश होकर चोरी करनी पड़ती है।"

('हाफमैन' के संस्मरण)

सरल साधना

शिष्य : दैनिक जीवन में आत्म-साक्षात्कार की साधना का जो दावा आप करते हैं, उसके सम्बन्ध में मुझे बताने की कृपा करें।

गुरु : मुझे जब भूख लगती है, तो मैं खाता हूँ और जब थकता हूँ तो विश्राम करता हूँ। बस यही मेरी साधना है।

शिष्य : ऐसा तो सभी करते हैं। इसमें विशेषता क्या है?

गुरु : नहीं, सभी ऐसा नहीं करते; हजार में एक भी सम्भवतः नहीं कर पाता होगा।

शिष्य : कैसे? कृपया स्पष्ट करके समझाइए।

गुरु : जब लोग खाने बैठते हैं, तो हाथ-मुँह मात्र से खाते हैं। मन अन्यत्र भटकता रहता है। सोते हैं तो शरीर

से सोते हैं, मन से नहीं। शरीर और मन के बीच की यह दरार ही तो साधना का विक्षेप है। मैं यह दरार नहीं पैदा होने देता।

(डा० मुजकी)

महान् बनने के लिए

स्वामी रामतीर्थ उन दिनों कॉलेज में प्राध्यापक थे। एक दिन कक्षा में उन्होंने श्यामपट्ट पर एक रेखा खींची और छात्रों से कहा, कि उस रेखा को छोटा करें। एक छात्र उठा और श्यामपट्ट के पास पहुंचकर उस रेखा को एक ओर से मिटाने लगा। पर प्राध्यापक महोदय ने उसे रोक दिया। कहने लगे, "मैंने इसे छोटा करने के लिए कहा है, मिटाने के लिए नहीं।"

सारे छात्र सोच-विचार में पड़ गए। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि बिना मिटाए वह रेखा किस प्रकार छोटी हो सकती है। तभी एक छात्र उठा। श्यामपट्ट के पास पहुंचकर उसने खड़िया उठाई और उस रेखा के ऊपर एक उससे बड़ी रेखा खींच दी।

अध्यापक उस छात्र की प्रशंसा करते हुए कहने लगे, "देखा आपने, ये लकीरें बताती हैं कि जीवन में महान् बनने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को मिटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आवश्यकता महान् कार्य करने की होती है।"

('जीवन-कण' से)

माया का मोह

अवन्तिका के एक मोक्ष-आकांक्षी वणिक के घर एक ब्राह्मण जब गीता-पाठ करने जा रहा था, तो उसे मार्ग को नदी शिप्रा के तट पर एक घड़ियाल बैठा मिला। घड़ियाल ने पंडित जी से कहा, "पंडितजी, आप मुझे प्रतिदिन गीता सुनाकर तब नगर में जाया करें।" दक्षिणा-स्वरूप मोतियों का एक हार उसने पंडितजी को दिया। अब तो यह ब्राह्मण नित्य-प्रति घड़ियाल को गीता सुनाने लगा। बाद में बनिए को सुना आता।

जब पाठ पूरा हुआ तो घड़ियाल ने ब्राह्मण को मोतियों से भरा एक घड़ा दक्षिणा में दिया और साथ ही यह भी कहा कि यदि आप मुझे त्रिवेणी-संगम पर छोड़ आएं तो पाँच घड़े मोती और दूंगा।

ब्राह्मण ने घड़ियाल की बात मान ली और उसे त्रिवेणी-संगम पर पहुंचा दिया। घड़ियाल ने भी अपने वचनानुसार पांच घड़े मोती ब्राह्मण को दक्षिणा में दे दिए। किन्तु दक्षिणा देने के बाद घड़ियाल व्यंग्यपूर्ण मन्द मुसकान के साथ ब्राह्मण की ओर देखता रहा।

ब्राह्मण को उसकी हँसी चुभ गई। तब ब्राह्मण ने घड़ियाल से हँसने का कारण पूछा। घड़ियाल ने उत्तर दिया, "आप अवन्तिका में जाकर मनोहर धोबी के गधे से पूछियेगा, वह इसका रहस्य आपको समझा देगा।"

अवन्तिका पहुंचकर ब्राह्मण मनोहर धोबी के गधे से

मिला। तब गधे ने उसे यह आत्म-वृत्तान्त सुनाया, "पूर्व-जन्म में मैं कोसल-नरेश का परिचारक था। नरेश एक बार त्रिवेणी स्नान को गए। त्रिवेणी के दर्शन से वे इतने आनन्दित हुए कि उन्होंने राज-पाट छोड़कर शेष जीवन वहीं भगवद्-भजन में बिताने का निश्चय किया। मुझ पर महाराज का बड़ा स्नेह था। अतः वे अनुग्रह के साथ बोले, 'इच्छा हो तो यहीं हमारे साथ रहो। तुम्हारी अवस्था भी सौ के लगभग हो रही है। अन्यथा एक सहस्र मुद्रा लेकर कोसल लौट जाओ।' मैं मूढ़ धन-वैभव के मोह में तीर्थ छोड़कर घर लौट आया। यही भूल ब्राह्मण देवता आपने भी की। बुढ़ापे में घड़ियाल जैसे जीव ने भी आत्म-कल्याण के लिए व्यवस्था कर ली और तुम मनुष्यों में श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी, तृष्णाकुल हो। तुम्हारी मंद बुद्धि पर ही वह घड़ियाल हँसा था।"

(स्वामी प्रणवानन्द)

स्नेहिल स्पर्श

जेक्स के धन और अनाचार की सीमा नहीं थी। जब वह टैक्स वसूली के लिए निकलता तो नगर-निवासी उसकी अमानुषिक यातनाओं के भय से जंगलों में जा छिपते।

एक दिन ईसा उसके नगर में आए। अपार भीड़ उनके दर्शन को उमड़ पड़ी। जेक्स भी एक पेड़ पर चढ़कर उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। जब ईसा वहाँ से गुज़रे तो

उन्होंने जेक्स को सम्बोधित करते हुए कहा, "जेक्स, पेड़ से नीचे उतरो। मैं आज तुम्हारा ही अतिथि बनूंगा।"

ईसा को एक कुख्यात धनी के घर इस प्रकार स्नेहपूर्वक जाते देख दर्शक रोष से भर उठे। वे इस कृत्य के लिए ईसा की निन्दा करने लगे। किन्तु वीतराग ईसा को निन्दा-स्तुति से क्या सरोकार! वे जेक्स के घर गए और उसके अतिथि बने। प्रभु की करुणा का स्पर्श पाकर जेक्स का हृदय हिम-खण्ड की तरह पिघल गया। तीखी आलोचनाएं जो काम वर्षों नहीं कर पायीं, उसे प्रेम ने क्षण भर में कर दिखाया। अतिथि-सत्कार के उपरान्त अन्तःप्रेरणा के वश जेक्स ने कहा, "प्रभो, आपके शुभागमन के उपलक्ष में मैं अपनी आधी सम्पत्ति दरिद्र नारायण को अर्पण करता हूं और जिनसे मैंने अनुचित उपायों से धन प्राप्त किया है, उन्हें चौगुना वापस करने का वचन देता हूँ।"

(सन्त ल्यूकस की गाथा के अनुसार)

संग्रह-त्याग

एक बार मिथिला के महाराज नेमि को दाह-ज्वर हो गया। उपचारार्थ रानियाँ चन्दन-केसर का लेप लगाने लगीं। किन्तु लेप घिसने में चूड़ियों के आपस में बजने का शब्द रोगग्रस्त राजा को कष्ट देता था। अतः सब चूड़ियाँ उतार ली गईं। केवल मंगल चिह्न के निमित्त प्रत्येक हाथ में एक-एक चूड़ी

छोड़ दी गई। अब शब्द होना बन्द हो गया। यह देख राजा की अन्तश्चेतना जागी। "तो संघर्ष भोगों के संग्रह में ही है, अपरिग्रह में नहीं। दस चूड़ियाँ बजती हैं, एक नहीं। क्यों न मैं भी संग्रह के मोह को त्यागकर परम सुख प्राप्त करूं?"

(उत्तराध्ययन-सूत्र से)

प्रेम की शक्ति

पिछले सप्ताह गोविन्द राघव ने एक छोटा-सा पत्र भेजा था। उसमें एक बिशप की बात थी। वह एक पहाड़ी पर चढ़ रहा था। उसी समय एक छः वर्ष की लड़की अपने दो साल के भाई को कंधे पर लेकर चढ़ रही थी और हाँफ रही थी। बिशप ने कहा, "अरे, यह लड़का तो तेरे लिए बहुत भारी है।"

लड़की ने जवाब दिया, "जरा भी भारी नहीं, यह तो मेरा भाई है।"

इस पर बापू ने लिखा, "आपका प्रेमपूर्ण पत्र मिला। कितना महान् विचार है—यह भारी नहीं, यह तो मेरा भाई है। भारी से भारी चीज पंख जैसी हल्की बन जाती है, जब प्रेम उसे उठाने वाला होता है।"

लड़की ने अपने एक वचन से एक बड़ा काव्य बना डाला।

बापू ने उस पर दो पंक्तियों का महाभाष्य कर दिया।

('महादेव भाई की डायरी' से)

'स्व'-रूप ज्ञान

एक भेड़ को मार्ग में एक अनाथ-सिंह शावक मिल गया। उसका मातृवात्सल्य उमड़ा। अपने बच्चों के साथ उसे भी वह दूध पिलाने लगी। सिंह-शावक बड़ा हुआ, किन्तु सिंह के व्यक्तित्व में नहीं, भेड़ के व्यक्तित्व में। भेड़ों की तरह वह भी घास चरता और जंगली जानवरों को देखकर डरकर भागता। एक दिन सिंह ने भेड़ों पर आक्रमण कर दिया। भेड़ों के साथ सिंह-शावक भी भागा। भागते-भागते जब वे एक जलाशय के पास पहुंचे तो शावक ने पानी में अपना बिम्ब देखा, "ऐं, मैं भी सिंह हूँ।"

तत्काल एक वन-वनान्तर प्रकम्पिनी गर्जना उसके कंठ से फूट पड़ी।

आत्म-ज्ञान होने पर व्यक्ति भी अपने भीतर के विराट् को इसी प्रकार पा जाता है।

(महर्षि रमण)

अपवित्रों में अपवित्र

शास्त्रार्थ में दिग्विजयी युवक रामानन्द कावेरी तट पर अर्घ्य चढ़ा रहे थे। संयोगवश चमड़ा धोने वाले एक चमार की

ओर से कुछ छींटे उन पर पड़ गए। ज्ञान-गर्व स्फीत आचार्य के मुख से क्रोधाग्नि बरस पड़ी—"नारकीय, अधम ! नाश हो तेरा, मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा।"

सौम्य व्यंग्य के साथ चमार बोला, "अपराध क्षमा हो, प्रभो ! स्नान तो मुझे करना पड़ेगा। चमड़े के छींटों से चमड़ा अपवित्र नहीं होता। किन्तु क्रोध, जो अपवित्रों में अपवित्र है, उसके अपावन छींटे मुझ पर पड़े हैं।"

संकल्प-शक्ति

गगनचुम्बी अभिलाषाओं से विभ्रान्त मांधाता स्वर्ग के पारिजात वन में पहुंचे। वहां कल्पवृक्ष के तले जाते ही उनकी कामनाएँ चंचल हो उठीं।—'यदि यहां मेरा विलास भवन होता ···।'

तत्काल ही वहां एक सर्व-सुख पूरित शयनागार निर्मित हो गया।

कामना-तरंग और आगे बढ़ी—'यदि यहां पीने को कादम्ब और अप्सराएं भी होतीं ···'

पलभर में यह भी सुलभ हो गया।

कुछ देर सुख भोगने के बाद एक हिलोर उठी—'कहीं इन्द्र को पता चल गया और मुझे स्वर्ग से निकाल दिया तो ···।'

दूसरे ही क्षण मान्धाता शत-शत टुकड़ों में धरती पर पड़े थे।

गुरु ने कहा, 'हे वत्स ! यह जीव मान्धाता है और यह जगत् कल्पवृक्ष । यहां जो जैसा संकल्प करता है, वैसा ही सिद्धि पाता है ।"

('हंसबोध' से)

साथ ले जाऊंगा

अमरावती में सुमेध नाम के एक ब्राह्मण रहते थे । बचपन से ही बड़े यत्नपूर्वक वह विद्याध्ययन करते थे । थोड़ी ही उम्र के होने पर उनके माता पिता मर गए । उनके निधन के बाद राशि-वर्द्धक नामक बही लिखने वाला व्यक्ति उनके पास आया और सोना, चांदी, मोती आदि से भरी कोठरियों को खोलकर सात पीढ़ियों के धन का विवरण बताते हुए, उसने सुमेध से कहा, "विप्र, इस सम्पूर्ण धनराशि के स्वामी आप हैं । अब इसे आप संभालिये ।"

सुमेध उस धनराशि को देखकर बड़ी चिन्ता में पड़ गए और सोचने लगे, 'इस धन में से एक पैसा भी हमारे पूर्वज अपने साथ नहीं ले जा सके किन्तु मुझे तो यह सब लेकर ही जाना चाहिए ।' और, दूसरे ही दिन सुमेध ने अपनी सम्पूर्ण धनराशि दान देकर संन्यास ले लिया ।

पहले रस्सी तो खोलो

साधु नदी में स्नान करने के लिए उतरने ही वाला था कि उसकी दृष्टि नदी के दूसरे तट पर नाव में बैठे एक आदमी की ओर गई । वह बड़े बल के साथ अपना डांड

चला रहा था। किन्तु फिर भी डोंगी टस से मस नहीं हो रही थी।

थोड़ी देर बाद उसकी दृष्टि साधु की ओर गई और उसने चिल्लाकर साधु से पूछा, "अरे भाई! इस नाव में कुछ बिगड़ गया है, यह तो आगे ही नहीं बढ़ती।"

साधु मुसकराकर बोला—"मेरे अबोध भाई, किनारे से नाव की रस्सी तो खोलो।"

(भिक्षु धर्मपाल)

शक्ति नहीं, विरक्ति

जगन्माता महाशक्ति से विविध शक्तियां पाकर भी जब मानव अपने बाहर-भीतर के पाप-सन्ताप का मूल नाश न कर सका तो महाशक्ति विचलित हो उठीं। वे महाशिव के पास जाकर बोलीं, "देवाधिदेव, क्या मानव के पाप-सन्ताप का कभी अन्त नहीं होगा!"

महादेव ने दयापूर्वक कहा, "पाप-सन्ताप के मूल नाश का कारण शक्ति नहीं, विरक्ति है। शक्ति के भीतर तो पाप-सन्ताप का स्रोत 'अहं' कुण्डली मारकर जा बैठा है। यह संसार क्या है? अहं की लहरों का समुद्र ही तो है। अतः जो एक लहर से दूसरी लहर के मस्तक पर चढ़ेगा, उसे अन्य सहस्रशः लहरों के थपेड़े खाने पड़ेंगे।"

('कंदर्पसूत्र' से)

सिद्धियां

स्वामी विवेकानन्द को एक ओर बुलाकर उनके गुरुदेव रामकृष्ण परमहंस बोले, "मैं तुम्हें अष्टसिद्धियां प्रदान करना चाहता हूँ। तुझे बहुत कार्य करना है, इनकी आवश्यकता पड़ेगी। बोल, लेगा ?"

क्षणभर सोचने के बाद विवेकानन्द ने पूछा, "क्या इन सिद्धियों से मुझे प्रभु-प्राप्ति में लाभ होगा ?"

परमहंस ने कहा, "सो तो नहीं होगा। हां, कोई सांसारिक कार्य इनसे कर सकते हो।"

स्वामी विवेकानन्द ने कहा, "तो मुझे नहीं चाहिए ये सिद्धियां।"

('स्वामी विवेकानन्द चरित' से)

सुखदा मणि

बंगाल में गोपाल भाण्ड हास्य-व्यंग्यमयी कुशाग्र बुद्धि के लिए प्रसिद्ध थे। उनके आनन्दी स्वभाव के कारण लोगों में यह धारणा बन गई थी कि किसी महात्मा ने उन्हें 'सुखदा मणि' दे रखी है, जिसके प्रभाव से वे सदा सुखी रहते हैं। राजसभा के पंडित उनकी पैनी व्यंग्य-वाणी से त्रस्त रहते थे। उन सब ने निश्चय किया कि किसी तरह इनसे 'सुखदा मणि' को छीन लिया जाए।

पंडितों ने उन्हें घर पर पकड़ लिया और पीटने लगे। गोपाल ने उद्देश्य पूछा तो बोले कि हमें 'सुखदा मणि' चाहिए। गोपाल भाण्ड बोले, "अरे भाई, तो मारते क्यों हो ? सीधी तरह क्यों नहीं मांग लेते ? चोरी के डर से मैंने उसे धरती में गाड़ रखा है। चलो मेरे साथ, तुम्हें वह जगह बता देता हूं। खोदकर निकाल लो।"

पंडितगण उनके पीछे-पीछे हो लिए। बीच जंगल में जाकर वे रुके और बोले, "यहां से सौ गज की दूरी पर ठीक चाँद के नीचे उसे मैंने गाड़ा है जो बुद्धिमान् हो, वह ढूंढ ले।"

सभी पंडित मणि की खोज करने लगे। वे जहां भी जाते चन्द्रमा उन्हें अपने सिर पर दीखता। इस प्रकार सारे ही पंडित जगह-जगह से खोदने लगे। गोपाल भाण्ड पास ही एक पेड़ के नीचे सो रहे। प्रातः उठकर पंडितों के पास गए। पंडित क्रोध से लाल-पीले हो रहे थे। सारी रात के परिश्रम के बाद भी किसी को सुखदा मणि नहीं मिली।

पर गोपाल भाण्ड कह रहा था कि मैंने एकदम सच बात कही थी। ठीक चाँद के नीचे सुखदा मणि गड़ी है। चाँद के नीचे आप सबके सिर थे और मनुष्य के सिर में ही सुखदा मणि रहती है। विशुद्ध बुद्धि ही तो सुखदा मणि है।

सज्जन

एक शृगाल सूखे कूप में गिर पड़ा। बहुत प्रयत्न किए पर बाहर नहीं निकल सका। कुछ देर बाद वहां से एक बकरी निकली। शृगाल ने कहा, "बहन, बड़ा शीतल जल है। आओ पियो।"

बकरी कुएं में उतर आयी। शृगाल उसकी पीठ पर चढ़कर बाहर निकल आया और बोला, "नासमझ बकरी, इतनी जल्दी किसी पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए।"

बकरी ने उत्तर दिया, "मूर्ख, तू नहीं जानता। सज्जन अपना स्वभाव नहीं छोड़ते। विपत्ति झेलकर भी वे परोपकार करते हैं। फिर भगवान ने हमारी जाति के वक्ष में दूध जो भरा है। हाँ, तू यहाँ रह जाता, तो यहीं मर जाता, किन्तु मेरी यह दुर्गति नहीं होगी। अभी कोई आयेगा और मुझे निकाल ले जायेगा। हम सर्वस्व देते हैं। अतः जहां जाते हैं, आत्मीयता ही पाते हैं।"

('हंसबोध' से)

दुःख से सुख

दो मित्र थे—एक अंधा और एक पंगु। वे एक साथ रहते थे। साथ-साथ ही भिक्षा माँगने जाते। एक दिन वे आपस में लड़ पड़े।

भगवान को दया आ गई। उन्होंने सोचा, अगर अंधे को नेत्र और पंगु को टाँगें दे दी जाएं तो कोई किसी पर आश्रित नहीं रहेगा। लड़ाई-झगड़े की नौबत भी नहीं आएगी।

उन्होंने पहले अंधे को दर्शन दिया और वर मांगने को कहा। फिर वे लंगड़े के सामने प्रकट हुए।

अंधे ने वर माँगा, "भगवन! इस लंगड़े को अंधा बना दो।"

लंगड़े ने वर मांगा, "प्रभो! उस अन्धे को लंगड़ा बना दो।"

(वि० स० खांडेकर)

समर्पित जीवन

श्री रामकृष्ण परमहंस के उपदेश सुनने वाले एक व्यक्ति ने एक दिन बड़े बालकोचित आग्रह के साथ रामकृष्णदेव से कहा, "मैं तो घोर पापी हूं। मैं कैसे समझूं कि भगवान मेरे भीतर हैं?"

श्री रामकृष्ण ने किंचित् ताड़ना के स्वर में कहा, "अपने भीतर केवल पाप ही पाप क्यों देखते हो? यह क्यों नहीं विश्वास करते कि जिसने एक बार भी शुद्ध हृदय से अपने आपको भगवान के प्रति समर्पित कर दिया, वह तर गया। जिसने एक बार भी प्रेम से उनको पुकारा, उसने पाप-मोचन का आश्वासन पा लिया।"

"किन्तु अपने आप भगवान को समर्पित कैसे किया

जाए ?" उस व्यक्ति ने अपनी विवशता और जिज्ञासा व्यक्त की।

"तो यह भी मुझे ही बताना होगा ? क्या शिशु को भी कोई मां के लिए रोना सिखाता है !" कहते-कहते श्री रामकृष्ण के नेत्रों से प्रेमाश्रु की अविरल धाराएं बहने लगीं।

('नवनीत' से)

विचार की शक्ति

विष्णुपुरी के परम श्रेष्ठि की उस दान पेटिका में नगर-निवासी प्रतिदिन एक स्वर्ण मुद्रा डालते थे। एक दिन श्रेष्ठि ने लोभ में आकर पेटिका में ताम्र मुद्रा ही डाली। संध्या को प्रतिदिन की भाँति पेटिका खुली तो परम श्रेष्ठि के आश्चर्य की सीमा न रही—पेटिका में अधिकतर तांबे के सिक्के ही थे।

भिक्षुओ, विचारों की शक्ति अदम्य है। मनुष्य मात्र विचारों की अदृश्य रज्जु से बंधा हुआ है। तुम्हारे मन का प्रत्येक विचार सारे मानव-समुद्र को तरंगित करता है। कोई भी व्यक्ति अलग कटा हुआ, अपने में ही पूर्ण द्वीप नहीं है। अतः सम्यक् विचार करो, सम्यक् चिन्तन करो।

('बुद्ध बोध' से)

अहं ब्रह्मास्मि

वायुदेव ने कहा, "तुम मुट्ठी भर मिट्टी के कण हो, अनायास तुम्हें उड़ा ले जाऊंगी।"

वरुणदेव ने कहा, "तू एक तृण है, मैं तुझे अपने वेग से बहा ले जाऊंगा।"

अग्निदेव ने कहा, "मेरी एक चिनगारी ही तुझे स्वाहा करने के लिए पर्याप्त है।"

पृथ्वी बोली, "मैं तुझे लील जाऊंगी।"

मैंने अपने चेहरे पर से आवरण को हटाकर कहा "मैं राजाधिराज हूं, ईश्वर-सन्तान हूं मैं!"

(अख्तरुल ईमान)

देह-मणि

महाप्रयाण के समय परम श्रेष्ठि ने अपने पुत्रों को चन्द्रकान्त मणि दी, "वत्स, इस कामधेनुरूपिणी मणि द्वारा तुम अनन्त सुख प्राप्त करो।"

ज्येष्ठ पुत्र ने रात्रि के प्रकाश के लिए मणि का प्रयोग किया।

छोटे पुत्र ने प्रणय-हेतु उसे नगर-वधू को अर्पण कर दिया। धन की भूखी गणिका ने उसे मणिकार को बेच दिया।

मणिकार तो पारखी ठहरा। पूर्णिमा को रासायनिक प्रयोग द्वारा उसने अक्षय स्वर्णराशि उससे प्राप्त की। स्वयं

सुख भोगा और परोपकार द्वारा करोड़ों के कष्ट मिटाए।

महर्षि ने दृष्टान्त समझाते हुए कहा "आयुष्मान्! मनुष्य, देह को भी तुम ऐसी ही चन्द्रकान्त मणि समझो।"

('चरित चिन्तामणि' से)

वृत्तियों का प्रभाव

समर्थ रामदास दिन में नित्य रामकथा के प्रसंग लिखते और रात को उन्हें अपने शिष्यों और श्रद्धालु भक्तों को सुनाते। हनुमान भी वेश बदलकर वहाँ रामकथा सुनने आते थे।

एक दिन कथा सुनते-सुनते हनुमान अपने को रोक न सके। बोले, "अशोक वाटिका में मैंने श्वेत नहीं, लाल कमल देखे थे। संशोधन कर लीजिये।"

समर्थ स्वामी रामदास बोले, "आप भूलते हैं। वे कमल लाल नहीं, श्वेत थे।"

हनुमान खीझ उठे, "मैंने अपनी आँखों से जो देखा था।"

अन्ततः यह विवाद स्वयं रामचन्द्र जी ने सुलझाया। वे सस्मित बोले, "हनुमान! तुमने वास्तव में श्वेत कमल देखे थे, परन्तु उस समय क्रोध से तुम्हारी आँखें लाल थीं। अतः तुम्हें वे श्वेत कमल लाल ही दिखाई दिये।"

(विनोबा)

एकनिष्ठ श्रद्धा

मौलाना रूम अपने शिष्यों को लेकर एक खेत में गए। वहाँ उन्होंने शिष्यों को चार गड्ढे बताए, जो पचास-पचास हाथ गहरे थे। इन चार गड्ढों के पास ही खेत का मालिक पाँचवां गड्ढा भी खुदवा रहा था।

शिष्यों की जिज्ञासा को जाग्रत देखकर मौलाना रूम ने कहा, "खेत में पानी देने के लिए इस व्यक्ति ने पचास-पचास हाथ गहरे चार कुएं खोदे हैं--एक के बाद एक। किन्तु चारों में पानी नहीं निकला। अब पाँचवां कुआं खोद रहा है। कितना मूर्ख है यह! अगर अपना धन और श्रम वह चार के बजाय एक ही दो सौ हाथ गहरे कुएं को खोदने में लगाता तो खेत भी नहीं बिगड़ता और पानी भी मिल जाता।

"जिज्ञासु शिष्यो! इससे शिक्षा लो। जो अपनी श्रद्धा और लक्ष्य बार-बार बदला करते हैं, उनकी यही गति होती है।"

(मोहम्मद अख्तर)

धर्म का सार

उस दिन प्रातःकाल महान् ईसाई धर्मशास्त्री संत थामस एक्विनास सलीब को देखते-देखते भाव-समाधि में लीन हो गए। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। घंटों वे मुग्ध भाव से बैठे रहे।

सायंकाल उनके विद्वान् मित्र फादर रेजिनाल्ड धर्मचर्चा के लिए आये और पूछने लगे, "धर्मशास्त्र लेखन का कार्य कब तक पूरा होगा ?"

सन्त ने सिर हिलाते हुए शान्त स्वर में कहा, "कभी नहीं।"

मित्र चकित रह गये। उनके बहुत आग्रह करने पर सन्त ने अपने इस निश्चय का कारण बताया—

"आज प्रातःकाल प्रभु-कृपा से सलीब ने मुझे यह अन्तर्ज्ञान दिया है कि समग्र विश्व के प्रति जीवन में सक्रिय, अहैतुक प्रेम अभिव्यक्त करना ही धर्म का सार है। तर्क और पांडित्य के बल पर रचे शास्त्र तो धर्म-फल के छिलके मात्र हैं। छिलकों को लगाने से भला क्या लाभ होगा ?"

प्रेम

कथा पुरातन है। एक बार ज्ञान और मोह कल्पगंगा के तट पर पहुंचे। गंगा ने कहा, "आओ, स्नान करो। मैं तुम्हें दिव्यरूप प्रदान करूँगी।"

ज्ञान ने सुना तो व्यंग्य से हँस पड़ा, किन्तु मोह ऐसी अनुरागपगी मनुहार को नहीं टाल सका। वह गंगा में कूद पड़ा। जब वह बाहर निकला, तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी उसे प्रणाम करने आए। वह मोह का स्वरूप त्याग, 'प्रेम' हो गया था।

(स्वामी रामतीर्थ)

दान

गांधीजी से एक बार एक व्यक्ति ने कहा, "बापू, यह दुनिया बड़ी बेईमान है। आप तो जानते हैं, मैंने पचास हजार रुपए दान देकर धर्मशाला बनवाई, पर अब लोगों ने मुझे ही उसकी प्रबन्ध-समिति से हटा दिया। धर्मशाला नहीं थी तो कोई नहीं था, पर अब पचास अधिकार जताने वाले आ गए।" उसकी बातें सुनकर बापू गंभीर हो गए। बोले, "तुमें यह निराशा इसलिए हुई कि तुमने 'दान' का सही अर्थ नहीं समझा। वास्तव में किसी चीज को देकर कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा दान नहीं, व्यापार है। और जब तुमने व्यापार किया, तो लाभ-हानि की संभावना तो रहेगी ही।"

(किशोर भाई मश्रुवाला)

जीवन

दक्षिण भारत के स्वनामधन्य दार्शनिक कवि तिरुवल्लुवर एक दिन सरिता-तट पर बैठे थे। अचानक उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति सरिता में कूदकर अपने प्राण देना चाहता है। तिरुवल्लुवर ने दौड़कर उसे पकड़ लिया तो उसने शिकायत की—"जिस जीवन की कोई सार्थकता न हो, उसकी रक्षा करने से क्या लाभ ?

तिरुवल्लुवर बोले, "देखो, इस दुनिया में धूल का एक कण तक निरर्थक नहीं है। अभी तुम्हें अपना जीवन अपने

लिए अनुपयोगी लग रहा है, पर निजी उपयोगिता ही तो एकमात्र उपयोगिता नहीं है। अपने लिए नहीं, तो दूसरों के लिए तुम उपयोगी बन सकते हो। और जब तुम दूसरों के लिए अपना जीवन बिखेर दोगे, तो अपने लिए भी तुम्हारा जीवन उपयोगी सिद्ध होने लगेगा।"

(श्रीनिवास शास्त्री)

प्रायश्चित्त

एक यवन राजा स्वामी रामानन्द के पास कई दिन आता रहा—वह बड़ी उलझन में था कि प्रायश्चित्त से मनःशुद्धि कैसे हो सकती है ?

स्वामी जी एक दिन उसे एक नदी के किनारे ले गए, जिसका पानी सड़ गया था। "राजन्, जानते हो यह पानी क्यों सड़ गया ?"

राजा ने उत्तर दिया, "इसे कौन नहीं जानता गुरुदेव कि प्रवाह रुकने से पानी सड़ जाता है।"

स्वामी जो ने स्पष्टीकरण किया, "तो इतना और जानो राजन् कि, पाप से जब हमारे प्रवाह रुक जाते हैं, तो प्रायश्चित्त वर्षा की बाढ़ बनकर उन्हें गति देता है।"

(योगानन्द)

पूर्णता

गिन नहीं पा रहा हूं, कौन-से जन्म की यह घटना आज अकस्मात् याद आ गई है—उस दिन हिमालय के सिर से मैं नीचे उतर रहा था। जिसे आजकल गंगोत्री कहते हैं, वहाँ मैं आया, तो देखा कि भूमि से सहसा एक स्रोत फूट निकला है और वह नीचे की ओर बहने लगा है। मैं उस जल-स्रोत के साथ हो लिया। वह स्रोत नीचे ही नीचे बहता गया और मार्ग में कई छोटे-बड़े नदी-नाले उसमें मिलते गए। उस जल-स्रोत की यह अद्भुत यात्रा मैं आश्चर्य-मुग्ध देखता गया। अन्त में कई दिनों की यात्रा के बाद वह जल-स्रोत, जो विशाल नदी बन गया था, समुद्र में जाकर समा गया। मैं उसके साथ-साथ समुद्र के अन्तराल में भी पहुंचा। क्षणभर तक वह स्रोत मुझे चकित दृष्टि से देखता रहा, फिर बोला, "सब कुछ देखकर भी लगता है तुम मेरी इस यात्रा का मर्म नहीं समझ पाए हो।"

मेरे स्वीकार करने पर वह आत्म-तुष्ट भाव से कहने लगा, "जानते ही हो, हिमालय कितना ऊंचा है, किन्तु ऊंचाई चाहे जितनी अमाप हो, वह पूर्णता नहीं है। पूर्णता तो गहराई है, जहां सारी कामनाएं निःशेष हो जाती हैं। मैं हिमालय की, जगत की, इस सबसे महान् ऊंचाई की आत्मा हूँ जो सागर की गहराई में पूर्णता पाने के लिए निकली थी—गंगा तो मेरा लोक-प्रदत्त भौगोलिक भौतिक नाम मात्र है।"

(स्वामी रामतीर्थ)

संत-महिमा

तुर्की और ईरानियों में भीषण युद्ध चल रहा था। तुर्क निरंतर हारते जा रहे थे। एक दिन योग से सुप्रसिद्ध सूफी संत फरीदुद्दीन अत्तार तुर्कों के चंगुल में पड़ गए। जासूसी के अपराध में उन्हें मौत का दण्ड दिया गया। एक धनिक ने उनके भार के बराबर हीरे दे दिये, बहुतों ने अपने प्राण ही बदले में अर्पित कर दिये, किन्तु सुलतान ने अत्तार को नहीं छोड़ा।

तब ईरान का बादशाह स्वयं पहुंचा और सुलतान से बोला, "जिस राज्य के लिए आपकी कई पीढ़ियां हम से युद्ध करती आ रही हैं, और फिर भी वह आपको अभी तक नहीं मिला, वही आप हमसे ले लीजिए और अत्तार को छोड़ दीजिए।

"धन नश्वर है, राज्य भी नश्वर है, किन्तु सन्त तो अविनाशी हैं। अत्तार को खोकर ईरान सदा के लिए कलंकित हो जाएगा।"

('स्वाति-बिन्दु' से)

स्वाद और भय

दो उल्लू दो दिशाओं से आकर एक पेड़ पर बैठ गए। एक की चोंच में साँप था और दूसरे की चोंच में चूहा। साँप ने उल्लू के मुख में दबे चूहे को देखा तो उसके मुंह में पानी भर आया। उधर चूहे ने साँप को देखा, तो उसके रहे-सहे होश भी गायब। दोनों उल्लुओं ने अपने शिकारों के ये सुख-दुख देखे,

तो विचार में पड़ गए। एक उल्लू ने दूसरे से कहा, "भाई, तुम समझे इसका रहस्य ?"

दूसरे ने कहा, "हां, समझा। पहला तो यह कि जीभ के वशीभूत जीव को मौत का भी स्मरण नहीं रहता। दूसरे, भय मौत से भी भयावना होता है।"

('बोधायन')

घट में परमेश्वर

संत एकनाथ कमण्डल में जल भरकर काशी से रामेश्वरम् की यात्रा कर रहे थे। रामेश्वर शिव का गंगाजल से अभिषेक बड़ा पुण्यप्रद माना जाता है। गर्मी के दिन थे। मीलों तक पानी नहीं मिलता था। संत एकनाथ ने देखा, एक गधा प्यास से मर रहा है। उन्होंने पानी का कमण्डल उसके मुंह में उंडेल दिया।

गधा जी उठा।

शिष्यों ने देखा तो आक्रोश की सीमा न रही। "यह आपने क्या कर दिया ? अब भगवान् शिव का अभिषेक कैसे होगा?"

एकनाथ ने परम संतोष के साथ कहा, "अरे, क्या तुमने नहीं देखा, स्वयं देवाधिदेव रामेश्वर ही तो गधे के रूप में यहां आए थे। कितने कृपालु हैं वे। स्वयं ही आ गए, हमें वहां तक जाने का कष्ट नहीं दिया।"

('हंसबोध' से)

पुरुषार्थ-महिमा

मीलों तक विस्तृत कुरुक्षेत्र का रणांगण खून से लथपथ था। सब ओर नरकंकाल पड़े हुए थे। महामुनि शमीक शिष्यों-सहित उधर से निकले। वहां अत्यन्त विस्मय के साथ उन्होंने चिड़ियों के चहचहाने का स्वर सुना। झुककर देखा तो एक विशाल घंटे के नीचे दो पक्षी शावक चहचहा रहे थे। जिस रणांगण पर लाखों दुर्जेय वीर योद्धा महाकाल के ग्रास बन गए थे, वहाँ ये दो पक्षी-शावक कैसे जीवित रह गये, इस चमत्कार की व्याख्या करते हुए महामुनि ने शिष्यों से कहा—

"शिष्यो, रणांगण में अर्जुन की प्रत्यंचा से छूटे तीर ने जब इन शावकों की गर्भिणी माता के प्राण ले लिये तब दो अण्डे आकाश से पृथ्वी पर गिरे। उसी समय संयोग से एक विशाल घंटा जो राजा भगदत्त के गजराज के गले में बंधा था, गिरकर इनका कवच बन गया। भगवान रक्षा करता है तो मृत्यु के मुख से बचा लेता है। किन्तु हे शिष्यो, अब तुम इन शावकों को आश्रम में ले जाओ और स्वयं इनके पालन-पोषण के सब सम्भव उपाय करो। दैव ने अब इनकी रक्षा का भार तुम्हें सौंपा है। और तुम केवल पुरुषार्थ से ही इनकी रक्षा कर सकते हो। देवताओं का काम समाप्त होने के बाद पुरुष के पुरुषार्थ का प्रारम्भ होता है। इसलिए कुछ अंशों में पुरुष देवता से महान् होते हैं, किन्तु महानता का यह वरदान केवल पुरुषार्थ-प्रिय व्यक्ति को ही प्राप्त होता है।"

('महाभारत' से)

शील-सम्पत्ति

युग बीते, दैत्य सम्राट् प्रह्लाद का आधिपत्य तीनों लोकों पर प्रतिष्ठित था। इन्द्र राज्य के पुनर्लाभ के लिए चिन्तित हो उठे। वे देवाचार्य बृहस्पति के पास गए और उपाय पूछा तो उन्होंने 'ज्ञान' से पुनर्लाभ की बात बताई। इन्द्र को बात जंची नहीं। वे सुराचार्य शुक्र के पास गए। आचार्य शुक्र ने उन्हें महाराज प्रह्लाद से ही पूछने का परामर्श दिया। इन्द्र ब्राह्मण वेश में प्रह्लाद के पास पहुंचे।

ब्राह्मण की जिज्ञासा को सुनकर प्रह्लाद ने उन्हें अपने साथ रहने के लिए कहा। प्रह्लाद इस ब्राह्मण से कुछ भी छिपाकर नहीं रखते थे।

एक दिन ज्ञान-चर्चा के प्रसंग में प्रह्लाद ने कहा, "द्विज-वर, विश्व का समस्त वैभव मानव के शील का दास है।"

अनन्तर प्रह्लाद ने ब्राह्मण से जब वर माँगने को कहा तो ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र बोले, "ऐसी कृपा है तो अपना शील मुझे दीजिए।"

शील ही तो महाराज प्रह्लाद का सर्वस्व था। पर वचन दे चुके थे। अब 'न' कैसे करते ?

एक तेज पुंज प्रह्लाद की देह से निकलकर इन्द्र की देह में समा गया। वह शील था। फिर एक और तेजोराशि निकली, तो प्रह्लाद के पूछने पर उसने बताया, "मैं धर्म हूं। जहाँ शील रहेगा, मैं भी वहीं रहूंगा।"

देखते-देखते तीसरा तेज निकला। पूछने पर उसने बताया,

"मैं सत्य हूं, शील और धर्म का सहचर।"

प्रह्लाद चिन्तित हो उठे। तभी चौथा तेज निकला। उसने अपना नाम 'बल' बताया। तभी उनके अंग-अंग को निपीड़ित करती हुई एक शक्ति प्रकट हुई। बोली, "मैं लक्ष्मी हूं। अब मैं भी चली। तुम छले गए। यह ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र है, जो तुम्हारे समस्त ऐश्वर्य का अधिकारी बन बैठा है।"

प्रह्लाद ने अपना शेष जीवन पुनः शील-सम्पत्ति के संचय में लगा दिया।

भाव-भूमि

ईसामसीह ने उस दिन का प्रवचन यों आरम्भ किया, "एक किसान ने जौ बोये। कुछ दाने पगडंडी पर गिरे और तुरंत उन्हें चिड़ियां चुग गयीं। कुछ गिरे पथरीली भूमि पर, जहाँ मिट्टी की परत बहुत पतली थी। ये बीज अंकुरित तो हुए पर धूप में जल्दी ही झुलस भी गए, क्योंकि उनकी जड़ें गहरी न थीं। कुछ दाने कँटीली झाड़ी में गिरे, जहाँ काँटों ने उनके अंकुरों को दबा डाला। कुछ भाग्यवान् बीज अच्छी मिट्टी में गिरे, अंकुरित-पल्लवित-पुष्पित हुए। समझे ?"

फिर शिष्यों के आग्रह पर उन्होंने रूपक का यों स्पष्टीकरण किया, "धर्म-वचनों की गति भी जौ के इन दानों जैसी होती है। कुछ श्रोताओं के मन में इन वचनों के पैठने के पूर्व ही, शैतान उन्हें चुग लेता है। कुछ श्रोताओं के मन में

ये वचन तुरंत श्रद्धा पैदा करते हैं, परन्तु यह श्रद्धा विपदा की धूप में शीघ्र कुम्हला जाती है। कुछ के मन में फैली भोगैषणा-वित्तैषणा की कटीली झाड़ियां धर्माकुर को दबा डालती है। केवल संस्कारवान् आत्मभूमि में पड़ा धर्मवचन फल देता है।"

('अमृतोपलब्धि' से)

मोह-पाश

हिमालय के हृदय से निकली गंगा जब तलहटी में नीचे उतरी तो अपरिमित वनश्री ने उसे सिर-आँखों में बसा लिया। गंगा वहीं छोटे-छोटे गर्तों को पूरित करती निवास करने लगी। देवताओं ने देखा तो चिन्तित हो उठे। उधर चिरकाल से प्रतीक्षारत मानव-समाज के संताप का तो कहना ही क्या! गंगा के इस प्रकार मोहपाश में फँसकर कर्तव्यच्युत होने का ब्रह्मा को भी बड़ा दुःख था।

सबकी प्रार्थना पर ब्रह्मा पृथ्वी पर उतरे और गर्त-गह्वरों में पड़ी अलसाई गंगा को सम्बोधित करते हुए बोले, "गंगे! किस मोहपाश में तू उलझ गई! कहाँ जा रही थी, और कहाँ रुकी रह गई! क्या तेरी तपोयात्रा का यही अंत है?"

गंगा ने अलसाई आँखें खोलीं और बोली, "क्या कहते हैं स्रष्टा, क्या मैंने अपनी सार्थकता सिद्ध नहीं की? क्या मैंने

अनेक गर्त-गह्वरों की प्यास नहीं बुझायी ?

प्रजापति मंदस्मित के साथ बोले, "बड़ी भोली है री तू ! केवल गर्तों को पूरित करना ही तो तेरा काम नहीं है, तुझे निःशेष धरती के कंठ की प्यास बुझानी है। तेरा दान ग्रहण करने के लिए यह भूमि प्यासी खड़ी है। उठ, आगे बढ़, इस नगण्य-से कार्य के लिए तेरा अहंकार उचित नहीं है। वह विराट् कार्य के लिए ही शोभा देता है।"

(बल्लतोल)

वाक्-संयम

जब महाभारत का अन्तिम श्लोक महर्षि वेदव्यास के मुखारविन्द से निकलकर गणेश जी की लेखनी द्वारा अंकित हो चुका तो महर्षि ने कहा, "हे गणपते ! धन्य है आपकी लेखनी ! पर उससे भी अधिक विस्मयकारी है आपका मौन ! इतना लम्बा हमारा-आपका साथ रहा, इस बीच मैं तो निरन्तर बोलता ही रहा पर आपके श्रीमुख से मैंने एक शब्द भी उच्चारित होते नहीं सुना।"

इस पर गणेश जी ने मौन का माहात्म्य बताते हुए कहा, "महर्षे ! किसी दीपक में कम स्नेह होता है, किसी में अधिक; किन्तु स्नेह का अक्षय भण्डार तो किसी में भी नहीं होता। इसी प्रकार सभी की प्राणशक्ति सीमित है। किसी की कम, किसी की अधिक, पर असीमत किसी की नहीं। इस शक्ति

का पूरा लाभ वही उठा सकता है, जो संयमपूर्वक उसका उपयोग करता है। संयम का प्रथम पाठ है वचोगुप्ति—वाक्-संयम। जो वाणी पर संयम नहीं करता वह निश्चय ही अनावश्यक बोलता है। अनावश्यक कथन से वैमनस्य उत्पन्न होता है। वचोगुप्ति से इस अनर्थ शृंखला से बचा जा सकता है। यही कारण है कि मैं मौन का उपासक हूं।"

सन्देह

एक लकड़हारे की कुल्हाड़ी खो गई। उसे अपने पड़ोसी के लड़के पर चोरी का सन्देह हुआ। उस लड़के से जब उसने इधर-उधर की कोई बात की तो उसे लगा कि लड़का झेंप रहा है। लकड़हारे को लड़के की चाल-ढाल में उचक्केपन के लक्षण दिखाई देने लगे।

बाद में लकड़ियों के ढेर के पास उसे अपनी कुल्हाड़ी मिल गई। उसके बाद जब उसने पड़ोसी के लड़के को देखा तो उसमें चोर जैसी कोई भी बात दिखायी नहीं दी।

हम अपनी आंखों पर जिस रंग की ऐनक लगाकर देखते हैं, सब कुछ उसी रंग का दिखाई पड़ता है।

सच्ची दया

एक राजा नववर्षारंभ के दिन पकड़े हुए पक्षियों को मुक्त करता था। जो भी प्रजाजन राजा को पक्षी भेंट करते, उन्हें भरपूर पुरस्कार दिया जाता था।

एक दिन राज्य के एक विचारक ने राजा से इसका कारण पूछा।

राजा ने बताया कि मैं दया के कारण ही पिंजड़े में कैद पक्षियों को खुले आकाश में मुक्त करता हूं।

इस पर विचारक ने कहा, "क्योंकि आपकी प्रजा जानती है कि आप मुक्त करने के लिए पक्षी चाहते हैं, इसलिए वे अधिक से अधिक पक्षियों को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। परिणाम यह होता है कि बहुत-से पक्षी पकड़-धकड़ में मारे जाते हैं। यदि आप वास्तव में पक्षियों के प्रति दयालु हैं तो प्रजा को आज्ञा दें कि कोई पक्षियों को न पकड़े।

आप उन्हें मुक्त करके जो दयालुता दिखाते हैं, वही अनेक पक्षियों की मौत का कारण बनती है।"

भले काम में देर क्यों ?

एक आदमी प्रतिदिन चोरी करता था। किसी ने उसे समझाया कि तुम यह काम छोड़ दो। किसी दिन पकड़े जाओगे और जेल में बन्द कर दिये जाओगे।

इस पर चोर ने उत्तर दिया, "आज से मैं प्रतिदिन चोरी करना छोड़ता हूं। अब महीने में एक बार चोरी किया करूंगा और सालभर बाद उसे भी छोड़ दूंगा।"

जब वह जानता था कि यह काम बुरा है तो उसे तुरंत छोड़ देना चाहिए था। साल भर प्रतीक्षा करने की क्या आवश्यकता थी!

गलत दिशा

एक राजा ने दूसरे राजा पर आक्रमण करने का निश्चय किया। राजपुरोहित कहीं तीर्थ-यात्रा पर जाने वाले थे। उन्हें ज्यों ही पता लगा वे राजा से मिलने चले आए।

उन्होंने राजा से कहा, "राजन, मुझे मार्ग में एक आदमी मिला जो बढ़िया घोड़ों वाले रथ पर सवार होकर उत्तर दिशा की ओर जा रहा था। मेरे यह पूछने पर कि कहां जा रहे हो, उसने दक्षिण के राज्य का नाम लिया।

मैंने उसे बताया कि तुम उलटी दिशा में जा रहे हो।

इस पर वह बोला, "कोई बात नहीं। मेरे घोड़े बहुत तेज दौड़ते हैं।"

मैंने फिर कहा, "पर तुम्हारी दिशा तो गलत है!"

वह फिर बोला, तो क्या हुआ, मेरा सारथी बहुत कुशल है।"

मैंने तीसरी बार उसे फिर चेतावनी दी कि तुम्हारी यात्रा की दिशा ही गलत है।

तब उसने कहा, "मेरे पास बहुत रुपए हैं।"

तब मैंने उससे कहा, "तुम्हारे घोड़े जितने तेज दौड़ने वाले होंगे, तुम्हारा सारथी अपने काम में जितना अधिक कुशल होगा और तुम्हारे पास जितने अधिक रुपए होंगे तुम अपने उद्देश्य से उतने ही दूर होते चले जाओगे।"

सुझाव : सहायता

एक भला आदमी अपने पड़ोसी के घर के सामने से जा रहा था। उसने देखा कि पड़ोसी रसोई के ऊपर की बहुत नीची छत पर लकड़ियाँ रख रहा है। उसने घर के मालिक को सलाह दी, "मेरे विचार में चूल्हे के ऊपर इस तरह लकड़ियां रखना ठीक नहीं है। इससे तो कभी भी आग लग सकती है।"

पर घर के मालिक ने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी।

बाद में कुछ ही दिनों बाद, घर में आग लग गई। कुछ लोगों ने आग बुझाने में उसकी सहायता की। आग बुझ गई पर कुछ लोग बुझाते समय मामूली से झुलस भी गये। सहायता करने वाले पड़ोसियों का आभार प्रकट करने के लिए एक भोज दिया गया। किन्तु जिस पड़ोसी ने चूल्हे के ऊपर लकड़ियां न रखने की सलाह दी थी, उसे बुलाया तक नहीं गया।

स्थान नहीं, स्वभाव बदलो

एक उल्लू ने एक चमगादड़ से कहा, "मैं इस जगह को छोड़ रहा हूं। यहाँ कोई भी मेरी बोली पसन्द नहीं करता।"

इस पर चमगादड़ ने कहा, "अगर तुम अपनी बोली बदल दो तो स्थान बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि ऐसा नहीं करोगे तो जहां भी जाओगे, वहीं लोग तुम्हारी बोली से घृणा करेंगे।"

अनेक रास्ते

एक दिन एक आदमी की एक भेड़ खो गई। उसने भेड़ की खोज के लिए अपने सभी नौकरों को भेजा। फिर वह अपने पड़ोसी के पास गया और भेड़ को खोजने के लिए उसके नौकर की सहायता भी मांगी।

पड़ोसी ने विस्मय से पूछा, "एक भेड़ को खोज के लिए आपको कितने आदमी चाहिए?"

पड़ोसी ने कहा, "इधर कितने ही रास्ते हैं, पता नहीं वह किस रास्ते से निकल गई है।"

जब खोज करने वाले वापस लौट आये तो पड़ोसी ने पूछा कि क्या भेड़ मिल गई?

उत्तर मिला "वहां अनेक रास्ते हैं और एक रास्ता दूसरे से जा मिलता है। इसलिए हमारी समझ में नहीं आया कि किस रास्ते से जाएं। इसलिए हम वापस लौट आए।"

कथागुरु ने शिष्यों को समझाते हुए कहा, "यदि रास्ते अनेक हों तो कोई भी अपनी भेड़ को नहीं ढूंढ सकता।

यदि किसी शिष्य की रुचियां अनेक हों तो वह अपना समय यों ही गंवाता है। सारे ज्ञान का स्रोत एक ही है, पर उसके विषय अनेक हैं। मौलिक सत्य पर पहुंचकर ही कोई भटकने से बच सकता है।"

श्रद्धा और अहंकार

एक शिष्य को अपने गुरुदेव पर अपार श्रद्धा थी। एक दिन वह नदी पार स्थित गुरुजी के आश्रम में उनके दर्शन करने चला। जब नदी आई तो गुरु-नाम का उच्चारण करता हुआ वह पानी पर चलता दूसरे तट पर जा पहुंचा।

गुरु का आश्रम नदी तट पर ही था और वे शिष्य को इस तरह नदी पार करते देख रहे थे।

गुरु ने मन में सोचा, "इतनी शक्ति है मेरे नाम में। मैं कितना महान और शक्तिशाली हूं।"

अगले ही दिन गुरुजी को भी नदी पार जाना था। वे "मैं-मैं" कहते हुए पानी पर चलने लगे पर डूब गए और मर गए।

श्रद्धा तारती है और अहंकार डुबोता है।

(रामकृष्ण परमहंस)

भीतर का मैल

भाव-विह्वल स्वर से स्तोत्र-पाठ करते हुए आचार्य रामानुज धीर-गंभीर गति से मन्दिर की परिक्रमा कर रहे थे। तभी एकाएक कोई चाण्डाल स्त्री उनके सामने आ गई। आचार्य देव के पैर वहीं ठिठक गए। स्तोत्र-पाठ रुक गया। उनके मुंह से कठोर वचन निकल पड़े—"अरी चाण्डालिन, यहां से दूर हो जा! मेरे मार्ग को अपवित्र न कर।"

पर वह चाण्डाल स्त्री न तो डरी और न हटी। वह हाथ जोड़कर पूछने लगी, "महात्मन्! मैं किस ओर जाऊँ? मेरे चारों ओर पवित्रता ही पवित्रता है। मैं अपनी अपवित्रता कहाँ ले जाऊँ?"

उसके ये शब्द सुनते ही मानो कोई आवरण आचार्य की आँखों पर से हट गया। वे उसके पैरों पर झुक गये और बोले, "मां, क्षमा करो! मुझसे भूल हुई। तुम परम पावन हो। भीतर का मैल ही हमें बाहर दिखाई देता है। जो भीतर की पवित्रता से आंखों को आंज लेता है, उसे सब ओर पवित्रता ही दिखाई देती है।"

सूत्र और भाष्य

एक पौराणिक पाप और उनसे मिलने वाले नरकों का लोम-हर्षक वर्णन कर कह रहा था, "भाइयो, पाप से सदा डरो।" मस्त बाबा बीच में बोल उठा, "पाप से डरो, पाप में डूब

मरो…" और अपना फटा कम्बल कंधे पर डालकर चल पड़ा। पौराणिक भी व्यास-पीठ से उठा और उसके पीछे हो लिया। श्रोता कहते ही रह गए, "बाबा तो बावला है।"

बाबा के सूत्ररूप वाक्य ने पौराणिक की शास्त्र-परिष्कृत मेधा में अनेक अर्थ-तरंगें उठा दी थीं। बहुत दूर चलने के बाद बाबा बैठ गया और बोला, "क्या चाहता है, बेटा ?"

पौराणिक ने निवेदन किया, "महाराज, सूत्र आपने बता दिया, अब भाष्य भी…"

बाबा बोला, "वह सब मैं नहीं जानता। तू कथा बाँचता है न, एक किस्सा सुन। एक अवधूत था। बड़ा योगी, बड़ा सिद्ध। उसका था एक चेला। रोज वह अवधूत को सताता रहता था कि बाबा, मुझे मालामाल होने का मंत्र दीजिए। परेशान होकर एक दिन अवधूत ने कहा, 'हर पखवाड़े नवमी के दिन सूर्योदय से पूर्व नहा-धोकर पच्चीस सौ बार राम-नाम का जाप किया कर। तीन साल ऐसा करेगा, तो लक्ष्मी जी सिद्ध हो जाएंगी। पर देख, जाप के समय बन्दर का खयाल मन में न आए।' वर्ष बीत गए; पर चेले का व्रत पूरा ही नहीं होता। आंख मूंदकर बैठते ही उसके सामने बन्दर नाचने लगता है। बस, किस्सा खत्म; अब भाग जा।"

अगले दिन पौराणिक कह रहा था, भाइयो ! सत्कर्म में चित्त रमाओ; धर्म का पालन स्वयं हो जायेगा।"

(दत्तोपंत)

ये तेरे ही रूप

एक मनुष्य ने मनोरंजन के लिए अपने घर के एक कमरे को शीशे की टुकड़ियां जड़कर पूरा शीशमहल बना डाला। दीवारें, छत और फर्श—सभी में शीशे जड़ दिये।

अब उसने बिजली की बत्ती जलाई और द्वार बन्द करके कमरे में जा बैठा। अपने चारों ओर, अपने ही हजारों प्रतिबिम्बों को देखकर उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

थोड़ी देर बाद वह कमरे से बाहर आया। वह कमरे का द्वार बन्द करना भूल गया। उसका पालतू कुत्ता उस कमरे में प्रविष्ट हुआ। उसने शीशों में प्रतिबिम्बित अपने ही रूप को देखकर समझा कि ये दूसरे कुत्ते हैं। वह उनसे लड़ने लगा और लड़ते-लड़ते मर गया।

इसी प्रकार मनुष्य अपने अज्ञान में, जब अपने साथियों से लड़ता है, यही समझता है कि वे उससे अलग हैं। जब वह यह अनुभव करता है कि हर प्राणी उसका अपना ही प्रतिबिम्ब है, तब वह औरों से लड़ने और घृणा करने की अपेक्षा उन्हें समान रूप से चाहने लगता है।

मन के जीते जीत

एक फ्रांसीसी युवक स्वभाव का तो सरल था पर क्रोधी था। एक दिन अरविन्द आश्रम की माताजी ने उससे कहा, "सोचकर बताओ, तुम्हारे-जैसे हृष्ट-पुष्ट लड़के के लिए कौन-सी

बात अधिक कठिन है ? थप्पड़ के बदले थप्पड़ लगाना, मारने वाले साथी के मुँह पर घूँसा जमा देना या ठीक उसी समय अपनी मुट्ठी जेब में डाल लेना ?"

"अपनी मुट्ठी जेब में डाल लेना।" उसने उत्तर दिया।

"अच्छा तो अब यह बताओ कि तुम्हारे-जैसे साहसी युवक के लिए सबसे सरल काम करना उचित है या कठिन ?"

एक मिनट सोचकर हिचकिचाते हुए उसने उत्तर दिया, 'सबसे कठिन काम।"

"बहुत ठीक ! अब अगली बार जब ऐसा अवसर आए तो यही करने का यत्न करना।"

इसके कुछ दिन बाद वह युवक माताजी के पास आया और उसने उन्हें समुचित गर्व के साथ बताया कि वह सबसे कठिन कार्य करने में सफल हुआ है।

उसने कहा, "कारखाने में मेरे साथ काम करने वाले एक साथी ने, जो अपने उग्र स्वभाव के लिए प्रसिद्ध है, क्रोध में आकर मुझे मार दिया; क्योंकि वह जानता था कि मैं साधारणतया क्षमा नहीं करता और मेरी बांहों में बल भी है, वह अपनी रक्षा के लिए तैयार हो गया। ठीक उसी समय मुझे आपकी सिखाई हुई बात याद हो आयी। वैसा करना जितना मैंने सोचा था, उससे कहीं अधिक कठिन लगा। पर मैंने अपनी मुट्ठी जेब में डाल ली। ज्यों ही मैंने ऐसा किया, मेरा क्रोध न जाने कहाँ चला गया और उसके स्थान पर मैं साथी के प्रति दया का अनुभव करने लगा। अब मैंने उसकी

ओर अपना हाथ बढ़ाया। इससे उसे इतना आश्चर्य हुआ कि एक क्षण तो वह मुंह बाए मेरी ओर ताकता रहा और एक शब्द भी न बोल सका। फिर वह शीघ्रता से मेरे हाथ की ओर लपका, उसे ज़ोर से दबाया और एकदम पिघलकर बोला, "अब तुम मेरे साथ जैसा चाहो बर्ताव कर सकते हो। आज से मैं सदा के लिए तुम्हारा मित्र हूं।"

हिम्मत न हारिये

एक सेनापति युद्ध में पराजित हो गया। जब यह समाचार उसकी पत्नी ने सुना तो वह उसके कमरे में गई। हार की वजह से सेनापति के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। पत्नी को सामने खड़ी देखकर वह धीरे से बोला, "प्रिये, बड़ी बुरी खबर है। लड़ाई के मैदान में मेरी सेना के पैर उखड़ गए हैं।"

पत्नी ने कहा, "सो तो मुझे मालूम हो चुका है, लेकिन मेरे पास एक खबर इससे भी बुरी है।"

यह सुनना था कि सेनापति चिल्ला पड़ा, "इससे भी बुरी! अरे, इससे बुरी और क्या खबर हो सकती है?"

पत्नी उसी तरह कहती गई, "तुम्हारे मैदान हारने की बात तो मैंने सुन ली, लेकिन तुम्हारी बातों से मुझे ऐसा लगता है कि तुम हिम्मत भी हार बैठे हो। भला तुम्हीं बताओ, यह हार बड़ी है, या वह?"

रोगी और वैद्य

केपरनाम में ईसामसीह अपने बारह शिष्यों के साथ अल्फियस के पुत्र लेवी के घर भोजन करने गये। भोज में बहुत-से भटियार, कलार तथा दुराचारी भी आए थे। ईसा ने सबके साथ समभाव और स्नेह से बात की और आनन्दपूर्वक भोजन किया। विरोधियों को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने ईसा के अनुयायियों को ताने दिये, "तुम्हारे गुरु को ये दुराचारी ही मिले बात करने के लिए ? क्या केपरनाम में कोई सभ्य सज्जन नहीं रहता ?"

बात जब ईसामसीह के कान में पड़ी तो विरोधियों के अज्ञान की बात सोचकर वे खिन्न हो गए और बोले, "भाई, उनसे पूछो कि वैद्य की आवश्यकता किसे होती है—स्वस्थ व्यक्ति को या रोगी को ? और जितना भी पाप या दुराचार है, वह मानसिक—आत्मिक रोग हो तो है, जिसे निवारण करना ईश्वर के पुत्र का उद्देश्य है।"

('ईशु प्रसंग' से)